भक्तामर-कथा

जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय।

भक्तामर-कथा ।

स्वर्गीय ब्रह्मचारी रायमल्लकृत

संस्कृत

भक्तामर-कथा।

का

हिन्दी-रूपान्तर।

कर्त्ता—

स्व० पं० उदयलालजी काशलीवाल।

प्रकाशक—

जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,

हीराबाग, पोष्ट गिरगाँव, बम्बई।

चतुर्थ संस्करण। क्रम सं० ७५००

जेष्ठ सुदी, वीर नि० सं० २४५६। मई, सन् १९३० ई०।

मूल्य सवा रुपया। पक्की जि. १॥=) रु०

प्रकाशक—

बिहारीलाल कठनेरा जैन,

मालिकः—

जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय,

हीरांबाग, गिरगांव-बम्बई ।

मुद्रकः—

रा. रा. रघुनाथ रामचंद्र बखले,

बम्बई वैभव प्रेस, सँढहर्स्टरोड,

गिरगांव-बम्बई ।

प्रस्तावना ।

भक्तामर एक स्तोत्र है । वैसे तो इसमें सभी तीर्थंकरोंकी स्तुति की गई है, पर स्तोत्र-रचयिता आचार्यने अपनी प्रतिज्ञामें लिखा है कि, 'मैं आदि जिनेन्द्रकी स्तुति करता हूँ' । इसीसे इस स्तोत्रका नाम 'आदिनाथ-स्तोत्र' होने पर भी इसका प्रारंभ जो 'भक्तामर-प्रणत-मौलि' आदि शब्द द्वारा किया गया है, इस कारण इसका नाम 'भक्तामर' भी पड़ गया है । स्तोत्र बहुत ही सुन्दर और मर्मस्पर्शी शब्दोंमें रचा गया है । पद-पद और शब्द-शब्दमें भक्ति-रसका झरना बहता है । जैनसमाजमें इसकी जो प्रतिष्ठा है वह तो है ही, पर इसे जो अन्य विद्वान् देख पाते हैं, वे भी इसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर कविकी शतमुखसे तारीफ करने लगते हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह स्तोत्र बहुत ही श्रेष्ठ है ।

भक्तामरस्तोत्र कई जगह प्रकाशित हो चुका है, पर आज हम इसे एक नए ही रूपमें प्रकाशित करनेको समर्थ हुए हैं, और हमें विश्वास है कि जैनसमाज हमारे इस परिश्रमका आदर भी करेगा ।

जैनसमाजमें भक्तामरस्तोत्र मंत्र-शास्त्रके नामसे भी प्रतिष्ठित है । कुछ विद्वानोंका मत है कि इसके प्रत्येक श्लोकमें बड़ी खूबीके साथ मंत्रोंका भी समावेश किया गया है । हो सकता है, पर कैसे ? इस बातके बतलानेको हम सर्वथा अयोग्य हैं । कारण हमारी मंत्र-शास्त्रमें बिल्कुल ही गति नहीं है । पर इतना कह सकते हैं कि ऐसी बहुतसी पुरानी हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हैं, जो सौ-सौ दो-दो-सौ वर्षकी लिखी हुई हैं और उनमें मंत्र वगैरह सब लिखे हुए हैं । मंत्रके साथ ही उन लोगोंकी कथाए भी हैं, जिन्हें मंत्रोंका फल प्राप्त हुआ है । ऐसी कथाएँ दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों समाजोंमें पाई जाती हैं । दिगम्बर समाजमें इस विषयकी दो ग्रन्थकर्त्ताकी दो पुस्तकें वर्तमानमें उपलब्ध हैं । एक तो शुभचन्द्र भट्टारककी और दूसरी रायमल्ल ब्रह्मचारीकी । इनके सिवा और भी होंगी, पर वे हमारे देखनेमें अभी तक नहीं आईं । हमारा विचार शुभचंद्रकृत भक्तामरकथाके प्रकाशित करनेका था । कारण उसकी कथाएँ

बहुत विस्तारके साथ लिखी गई हैं। पर हमें मूल पुस्तक प्राप्त नहीं हो सकी, इसलिए हमने फिर रायमल्लकी बनाई हुईका ही हिन्दी रूपान्तर करके पाठकोंकी भेंट किया है।

रायमल्ल कब हुए, वे कौन थे; और कब उन्होंने इस पुस्तकको रचा ? इस विषयका स्वयं उन्होंने पुस्तकके अन्तमें परिचय दिया है। इसलिए यहाँ पर उस विषयमें कुछ लिखना उचित नहीं जान पड़ता।

इसकी कथाओंके पढ़नेसे सर्वसाधारणकी इच्छा होगी कि हम भी इसके मंत्रोंको सिद्ध कर सब सिद्धियाँ प्राप्त करें, लक्ष्मीको अंकशायिनी बनावें, संसारमें सम्मान लाभ करें, और सबको अपना अनुगामी बनावें, आदि। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे मंत्र-सिद्धिसे उक्त सब बातें प्राप्त कर सकते हैं; परन्तु उन्हें पूर्णतः ध्यानमें रखना चाहिए कि मंत्र-शास्त्र जैसा ही उपयोगी है वैसा ही अत्यन्त कष्ट-साध्य भी है। बल्कि सर्व-साधारणके लिए तो उससे लाभ उठाना असंभव है। मंत्रोंके सिद्ध करनेके लिए मानसिक और शारीरिक बलकी पूर्णता होनी ही चाहिए। साधकोंके मनमें कोई बुरे विकार, बुरे भाव और अपवित्रता नहीं होनी चाहिए। इसमें चंचल मनको एक जगह खूब दृढ़ रोके रखनेकी बहुत ही जरूरत है। विषय-लालसा, काम-वासना वगैरहसे मनको कभी विचलित नहीं होने देना चाहिए। उसे सदा संयत—अपने वशमें रखना चाहिए। उसी तरह शरीर भी अत्यन्त सहनशील होना चाहिए। क्योंकि मंत्र साधनेवालोंके सिर पर हर समय अनेक उपद्रव, अनेक कष्ट, अनेक आपदाएँ घूमती रहती हैं। जिसने उन पर विजय प्राप्त नहीं कर पाया फिर वह कहींका नहीं रहता। शास्त्रोंमें अनेक उदाहरण ऐसे मिलेंगे कि मंत्र साधनेसे कई विक्षिप्त हो गए, कई भय खाकर मर मिटे। इसका यही कारण है कि उनमें मानसिक और शारीरिक बल नहीं था। जैन-शास्त्रका तो सिद्धान्त है कि जिसमें ये दोनों बल नहीं वह न योगी हो सकता है और न भोगी। उसका जन्म निरर्थक है। इस पुस्तकको देखकर अनेक सज्जन इस विषयमें सफलता लाभ करनेकी दौड़ लगानेका यत्न करेंगे। हम उन्हें यह नहीं कहते कि वे अपनी कार्यसिद्धिके लिए यत्न न करें; पर इसके पहले वे इतना जरूर देखलें कि उनमें मानसिक और शारीरिक बल कितना है ? उनकी पूर्णता है या नहीं ? इसके बाद यदि वे अपनेको सब तरह समर्थ पावें तो निडर होकर इस विषयमें आगे बढ़ें। और यदि अपनेको समर्थ न देखें तो दिनरातके अभ्यास द्वारा अपने शरीर और मनको शक्तिशाली बनाकर फिर इसमें हाथ डालनेका

यत्न करें। अन्यथा अपने मनसूबेको छोड़ दें। बीचकी स्थितिवाले मंत्र-शास्त्रसे लाभ उठा सकेंगे, इसका हमें सन्देह है। बल्कि आश्चर्य नहीं कि लाभके बदले हानि उनके पल्ले पड़ जाय और फिर उससे पीछा छुटाना भी उनके लिए कठिन हो जाय। हमारा विनयपूर्वक अनुरोध है कि पाठक हमारी इस प्रार्थना पर विशेष ध्यान दें।

इसके सिवा मंत्र-शास्त्रके सम्बन्धमें एक और बात विशेष ध्यान देनेकी है। वह यह कि मंत्रोंकी आराधना बहुत शुद्धताके साथ होनी चाहिए। अक्षर वगैरहके उच्चारणमें ह्रस्व, दीर्घ आदिका पूर्ण विचार रखना चाहिए। क्योंकि इस विषयमें भगवान समन्तभद्रका मत है कि:—

‘ न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो निहन्ति विषवेदनां।’

अर्थात् अक्षर–रहित मंत्र विषकी पीड़ाको नष्ट नहीं कर सकता। विष-पीड़ा यहाँ सामान्य समझना चाहिए। आचार्यका आशय है कि अशुद्ध मंत्रसे कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता।

इस पुस्तकमें हमने मंत्रोंके साथ साधन-विधि और यंत्र भी लगा दिये हैं। यंत्र क्रमबार सबके अन्तमें लगे हैं। साधन-विधि मंत्रोंके साथ है। मंत्रविधिके सम्बन्धमें विशेष यह कहना है कि कई मंत्रोंकी तो इसमें पूर्ण विधि है और कई मंत्रका केवल फल मात्र लिखा है। हमारे पास जितनी प्रतियाँ थीं, उन सबमें एकसा पाठ था। इसका कारण शायद यह हो कि कई श्लोकोंके मंत्रोंका फल परस्परमें मिलता है, इसलिए हो सकता है कि ऐसे मंत्रोंकी साधन-विधि एक ही हो; और इसी लिए दुबारा फिर उसके सम्बन्धमें नहीं लिखा गया हो। जो हो, ऐसे सामान्य विधिवाले मंत्रोंका जाप्य प्रतिदिन तो देना ही चाहिए। इसके सिवा किसी दूसरी प्रतिमें विशेष हो तो उसे सुधार लेना चाहिए। ऐसी विधिवाले मंत्र ये हैं--

नं० १४–२२–२५–२७–२८–३०–३१–३५–३८–३९–४१–४२–४३ ४४–४५।

इसके सिवा और भी कुछ मंत्र ऐसे हैं जिनके विषयमें केवल १०८ बार ही जाप देनेका लिखकर विशेष विधि छोड़ दी गई है। इन सब बातोंका खुलासा किसी प्राचीन पुस्तकमें देखना चाहिए। हमें जितनी विधि उपलब्ध हुई उसे हमने लिख दिया है।

हमें यंत्रमंत्रकी पाँच प्रतियाँ प्राप्त हुई थीं। इनके सिवा एक कर्णाटक लिपिमें छपी हुई पुस्तक भी हमने मंगाई थी; पर वे प्रायः सब ही अशुद्ध थीं। हमसे जहां तक

बना सबकी सहायतासे ठीक करके यह यंत्र-मंत्रोंका संग्रह किया है । हमें विश्वास है कि तब भी बहुतसी अशुद्धियाँ रह जाना संभव है, उन्हें पाठक किसी पुरानी प्रतिसे शुद्ध करनेका यत्न करें ।

हम उन सज्जनोंके अत्यन्त उपकृत हैं जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर ध्यान देकर यंत्र-मंत्रकी पुस्तकें भेजनेकी उदारता दिखाई है ।

संस्कृत-कथाओंका रूपान्तर हमने अपनी पद्धति पर ही किया है । आवश्यकतानुसार कथाओंमें कुछ अंश मिलाया है । रूपान्तर शब्दार्थकी प्रधानतासे नहीं, पर भावकी प्रधानता लेकर किया गया है ।

अन्तमें झालरापाटन निवासी नवरत्न श्रीयुक्त पं० गिरिधर शर्माके हम अत्यन्त कृतज्ञ हैं कि उन्होंने मूल भक्तामर पर लिखी हुई अपनी 'हिन्दीभक्तामर' नामक सरस सुन्दर कविताके प्रकाशित करनेकी हमें आज्ञा देकर कृतार्थ किया ।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधाति सज्जनाः ॥

विनीत--

उदयलाल काशलीवाल ।

श्रीपरमात्मने नमः ।

भक्तामर-कथा ।

मंगल और कथावतार ।

श्रीवर्द्धमानं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
दोषैर्व्यपेतं ह्यविरुद्ध-वाचम् ।
वक्ष्ये फलं तदृषभस्तवस्य
सूरीश्वरैर्यत्कथितं क्रमेण ॥ १ ॥

क्षुधा, तृषा, रोग, शोक, भय, चिन्ता, राग, द्वेष, मोहआदि दोषोंसे रहित और जिनके वचनोंमें परस्पर विरोध नहीं है, उन श्रीवर्धमान तीर्थंकरको नमस्कार कर भगवान् ऋषभदेवकी स्तुतिरूप भक्तामरस्तोत्रका फल कहा जाता है, जैसा कि उसे पूर्वके ऋषि—महात्माओंने कहा है।

भारतवर्षमें मालवा प्रान्त प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है । उसमें धारा नामकी एक सुन्दर नगरी है । वह सुन्दर सुन्दर महलोंसे युक्त है । उन महलों परकी फड़कती हुई ध्वजाएँ बड़ी शोभा देती हैं । वहाँके लोगोंके मुँहमें सरस्वतीका निवास है—वे अच्छे विद्वान् हैं । जब चन्द्रमा नगरीके ऊपर आता है तब उसका हरिण चन्द्र-मुखियों द्वारा गाये गये मनोहर गीतोंको सुननेके लिए वहीं ठहर जाता है । कलंक-रहित चन्द्रमा तब बहुत सुन्दर दीखने लगता है ।

धारा नगरीके राजा भोज संसारमें बहुत प्रसिद्ध हैं । उन्होंने दान-मानादिसे सारी पृथ्वीको सन्तुष्ट कर लिया है। इसलिए उनका कोई दुश्मन

नहीं है । उनका मंत्री बड़ा बुद्धिमान् है। उसका नाम मतिसागर है । वह जिनभगवान्का बहुत भक्त है ।

एक दिन भोजराज सभामें बैठे हुए थे । उन पर चँवर ढुर रहे थे । इतनेमें कालिदास आदि कई पंडित, जो सब शास्त्रोंके अच्छे जानकार थे, राजसभामें आए । उन्हें अपने पाण्डित्यका खूब अभिमान था । वे मंत्र-शास्त्रके भी अच्छे विद्वान् थे । उन्होंने राजासे कहा-महाराज ! हम सुनते हैं कि आपके राज्यमें नंगे साधुओंका बहुत जोर है । वे बड़े विद्वान् समझे जाते हैं । पर वास्तवमें वे ढोंगी हैं और कुछ नहीं जानते हैं । यदि वे कुछ जानते हैं तो उन्हें हम सरीखा कोई आश्चर्य बतलाना चाहिए ।

इतना कहकर उनमेंसे कालिदास नामके पंडितने अपने पाँवोंको छुरीसे काट लिये, और कालिकाका आराधन कर, जिसे कि उसने पहलेसे ही साध रक्खा था; फिर उन्हें वैसे ही जोड़ लिये । और इसी तरह भार्गवी नामके पंडितने अम्बिकाकी आराधना द्वारा अपना भग्नोदर रोग दूर किया । माघ नामके पंडितने सूर्यकी उपासना द्वारा कोढ़से झरते शरीरको आराम कर उसे सुन्दर बना लिया । इत्यादि बहुतसी आश्चर्य भरी बातें राजाको दिखला कर उन्होंने कहा-महाराज ! हम सब शास्त्रोंके जानकार हैं; मंत्र-शास्त्र पर भी हमारा पूर्ण अधिकार है । ऐसी हालतमें आपके पवित्र राज्यमें विद्वानोंका आदर न होकर ढोंगियोंकी पूजा हो यह कितने कष्टकी बात है ! आपको इस पर विचार करना चाहिए ।

उन पंडितोंके पाण्डित्य प्रगट करनेवाले वचनोंको सुनकर राजाने अपने मंत्रीसे कहा—तुम अपने गुरुओंको मेरे सामने उपस्थित करो ।

यदि वे अपने विद्या-बलसे मुझे कुछ आश्चर्य दिखला सकेंगे तो मैं अवश्य उनका सम्मान करूँगा और उन्हें सर्वश्रेष्ठ समझूँगा।

मंत्रीने उत्तर दिया—महाराज ! मेरे गुरु सदा आत्म-कल्याणमें लगे रहते हैं। वे बड़े दयालु हैं। छोटे बड़े सब जीवों पर उनकी एकसी दया है; और इसी लिए वे मंत्र-तंत्रादिके द्वारा किसीको कष्ट देना अच्छा नहीं समझते। पर वे सब जानते हैं। यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है कि वे कुछ अपना प्रभाव दिखलावें, तो अच्छी बात है। मौका मिलने पर मैं आपकी आज्ञाका अवश्य पालन करूँगा।

इसी अवसरमें श्रीमानतुंग मुनिराज, जो कि अपने निर्मल चारित्रसे संसारको पवित्र कर रहे थे, विहार करते हुए उधर आ निकले। मतिसागर मुनिराजका आगमन सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। वह उनकी वन्दनाके लिए वनमें गया। वहाँ उनके दर्शन कर उसने पवित्र धर्मोपदेश सुना। इसके बाद मुनिराजसे उसने प्रार्थना की कि प्रभो! यहाँके राजा भोज बहुत बुद्धिमान् हैं, पर वे जैनधर्मसे बिल्कुल अनभिज्ञ हैं। इसलिए कालिदास वगैरह पंडित अपने पाण्डित्यके अभिमानमें आकर सदा जैनधर्मकी निन्दा किया करते हैं। वह मुझसे नहीं सही जाती। आप उसके लिए कुछ उपाय कीजिए, जिससे जैनधर्मकी प्रभावना हो और राजाको जैनधर्म पर विश्वास हो।

मानतुंगस्वामी मंत्रीका सब अभिप्राय जानकर राजसभामें गये और उन्होंने राजासे कहा-राजन् ! जैनधर्मके सम्बन्धमें आपको जो भ्रम है उसे निकाल डालिए। मैं सब तरह आपकी समझौती करनेको तैयार हूँ। यह देख, राजाने उनकी विद्याकी परीक्षा करनेके लिए मुनिराजको लोहेकी अड़तालीस साँकलोंसे खूब मजबूत जकड़वा कर और भीतरके तलघरकी कोठड़ियोंमें बन्द कर सब पर मजबूत ताले लगवा दिये।

मुनिराजने वहाँ आदिनाथ भगवानकी स्तुतिमें इसी भक्तामरस्तोत्रका रचना प्रारंभ किया। वे जैसे जैसे इसे रचते जाते थे वैसे वैसे उनकी अपार भक्तिके प्रभावसे उनके बन्धन टूटते जाते थे। जब सब बन्धन टूट गये और सब कोठडियोंके ताले भी अपने आप खुल पड़े तब अन्तमें केवल हाथोंको वैसे ही बँधे रखकर मुनिराज राजसभामें आ उपस्थित हुए। वे राजासे बोले-राजन्! मैंने तो अपनी शक्तिका तुम्हें परिचय दिया, अब तुम्हारे शहर में भी कोई ऐसा विद्वान पंडित है जो अपनी विद्याके बलसे मेरे हाथोंका बन्धन तोड़ सके ? यदि हो, तो बुलवाकर मेरे बन्धन तुड़वाइए।

यह देख राजाने कालिदासआदि विद्वानोंकी ओर इशारा कर बन्धन तोड़नेके लिए उनसे कहा। राजाकी आज्ञा पाकर वे उठे और अपनी अपनी विद्याका बल बताने लगे, पर उनसे कुछ भी नहीं हुआ। यह देख वे बड़े शर्मिन्दा हुए। जब उन्होंने अपनी शक्तिभर बन्धनके तोड़नेका खूब प्रयत्न कर लिया और कुछ नहीं कर सके तब मुनिराजने राजासे कहा-राजन्! इन बेचारोंकी क्या ताकत जो ये इस बन्धनको तोड़ सकें। जो सियालको जीतनेवाले हैं वे सिंहको नहीं जीत सकते। यही हाल इन लोगोंका है जो ये दूसरोंको ठगने और मुग्ध करनेके लिए अपनी माया द्वारा आश्चर्य भरी बातें दिखाया करते हैं और उस-पर बड़ा अभिमान करते हैं। पर इनका यह अभिमान करना झूठा है। इनका अभिमान करना तो तब सच्चा समझा जाता जब कि ये इस बंधनको तोड़ देते। अस्तु; ये लोग यदि इसे नहीं तोड़ सकते तो मैं ही तोड़े देता हूँ। यह कहकर मुनिराजने अपने स्तोत्रका अन्तिम श्लोक रचा। उसका पूरा रचा जाना था कि सबके देखते देखते मुनिराजके हाथोंका बन्धन टूटकर अलग जा गिरा। यह देखकर कालिदास वगैरह पंडितोंको

बड़ा हतप्रभ होना पड़ा। साथ ही राजाको भी अपने अविचार पर लज्जित होना पड़ा। राजा मुनिकी तपश्चर्याके प्रभावको देखकर बहुत खुश हुआ। उसने फिर मुनिकी बड़े भक्तिभावसे स्तुति की—कि प्रभो! संसारमें आप बड़े भाग्यशाली हैं, मोह-शत्रुके नाश करनेवाले हैं, बड़े तपस्वी हैं, ज्ञानी हैं, सत्यवादी हैं, साक्षात् मोक्षके मार्ग हैं, संसारका सच्चा हित करनेवाले हैं, शंकर हैं, और क्षमाके सागर हैं; जो अपराधी लोगों पर भी सदा क्षमा करते हैं। नाथ! अज्ञान-वश जो कुछ मुझसे अपराध बन पड़ा है उसके लिए मैं आपसे क्षमाकी भीख माँगता हूँ। यह कहकर राजा बड़े विनीत भावसे मुनिराजके पाँवोंके पास आ खड़े हुए। मुनिराजने तब उन्हें धर्मोपदेश दिया। उससे राजाका जैनधर्म पर दृढ़ विश्वास हो गया। वे मुनिराज द्वारा उपदेश किये व्रतोंको स्वीकार कर उत्तम श्रावक बन गये। इस प्रकार धर्म-प्रभावना कर मुनिराज वहाँसे विहार कर गये।

इसके बाद भोजराजने अपनी नगरीमें बहुतसे जिन मन्दिर बनवाये और उनमें विराजमान करनेके लिए बहुमूल्य सुन्दर जिनप्रतिमायें तैयार करवा कर उनकी बड़े उत्सवके साथ प्रतिष्ठा करवाई, पात्रोंको खूब दान दिया। राजाके जैनधर्म स्वीकार करनेसे धर्मकी बड़ी प्रभावना हुई।

श्रीमानतुंगस्वामीके बनाये पवित्र भक्तामरका जो श्रद्धा-भक्तिसे प्रतिदिन पाठ किया करते हैं, वे मनचाही सिद्धिको नियमसे प्राप्त करते हैं। यह भक्तामर-स्तोत्रकी रचनाका कारण है। अब इसके द्वारा जिन जिन लोगोंने फल प्राप्त किया है, उनकी कथाएँ संक्षिप्तमें यहाँ लिखी जाती हैं।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम् ।
सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम् ॥ १ ॥
यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ २ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

हैं भक्त-देव-नत मौलि-मणि-प्रभाके
उद्योतकारक, विनाशक पापके हैं,
आधार जो भवपयोधि पड़े जनोंके,
अच्छी तरा नम उन्हीं प्रभुके पदोंको—
श्रीआदिनाथविभुकी स्तुति मैं करूँगा;
की देवलोकपतिने स्तुति है जिन्होंकी—
अत्यंत सुन्दर जगत्त्रय-चित्तहारी
सुस्तोत्रसे, सकल शास्त्र-रहस्य पाके ॥

अर्थात् जो नमस्कार करते हुए भक्त देवोंके मुकुटोंमें जड़े रत्नोंकी कान्तिके उद्योतक हैं—बढ़ानेवाले हैं, अर्थात्-जिनके चरणोंकी कान्तिका इतना तेज है कि वह स्वर्गीय रत्नोंकी कान्तिको भी दिपाता है, जो पापरूपी अन्धकारके नाश करनेवाले, और युगकी आदिमें—कर्मभूमिकी प्रवृत्तिके समय संसार-समुद्रमें गिरते हुए जीवोंके आश्रय—बचानेवाले हुए, उन जिन भगवान्के चरणोंको मन-वचन-कायकी शुद्धिपूर्वक नमस्कार कर मैं प्रथम जिनेन्द्र श्रीआदिनाथ भगवान्की स्तुति करता हूँ, जिनकी कि स्तुति देवोंने-जिनकी कि बुद्धि द्वादशांग और चतुर्दशपूर्वके तत्त्वज्ञानसे बहुत विलक्षण थी—उदार और तीन जगत्के हृदयोंको मुग्ध करनेवाले स्तोत्रों द्वारा की है ।

हेमदत्तकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मंत्रोंकी आराधनासे हेमदत्त सेठको जो फल प्राप्त हुआ उसकी कथा लिखी जाती है। उसे सुनिए—

एक दिन राजा भोज राज-सभामें बैठे हुए थे। इतनेमें कुछ ब्राह्मणोंने आकर उनसे प्रार्थना की कि महाराज! सुना जाता है—भक्तामरका बड़ा माहात्म्य है, और उसे बुद्धिमान् मानतुंगने पहले बतलाया भी था। पर हमें इससे यह विश्वास नहीं होता कि वह भक्तामरका माहात्म्य था। क्योंकि मानतुंग मंत्र-शास्त्र जानते थे, इस लिए संभव है, उन्होंने मंत्रकी करामात दिखला कर उसे स्तोत्रकी कह दिया हो, अथवा किसी देवताकी आराधना या किसी औषधि द्वारा ऐसा कर दिखाया हो। क्योंकि यहाँ बहुतसे मंत्र-तंत्रके जाननेवाले नंगे साधु इधर उधर घूमा ही करते हैं। इसलिए हम तब भक्तामरका सच्चा माहात्म्य समझें जब कि कोई दूसरा भी इसके द्वारा वैसा ही चमत्कार बतलावे। ब्राह्मणोंके वचन सुनकर राजाने सभाकी ओर आँख उठाकर कहा—क्या हमारी नगरीमें भी कोई भक्तामरस्तोत्रका अच्छा जानकार है। उनमेंसे एक मनुष्य बोला कि महाराज! हेमदत्त सेठ भक्तामरके अच्छे जाननेवाले हैं। वे बडे भद्र, धर्मात्मा और सदाचारी श्रावक हैं। राजाने अपने नौकरोंको भेजकर हेमदत्तको बुलवाया। हेमदत्त राजाज्ञा पाते ही विलम्ब न कर उसी समय राजसभामें आ-उपस्थित हुए। राजाने उनका उचित सन्मान कर पूछा—क्या आप भक्तामरको, जो कि श्रीमानतुंग महाराजका बनाया हुआ है, जानते हैं। सुना है कि उसकी आपको सिद्धि भी प्राप्त है। कहिए यह बात ठीक है? उत्तरमें हेमदत्तने कहा—महाराज! थोड़ा कुछ उसके विषयसे मैं परिचित हूँ। आप यदि

परीक्षा करना चाहते हैं, तो कृपाकर मुझे तीन दिनकी अवधि दीजिए। हेमदत्तके कहे अनुसार राजाने तीसरे दिन उन्हें खूब मजबूत बाँधकर एक बहुत ही गहरे कुएमें डलवा दिया और निगरानी रखनेके लिए अपने नौकरोंको बैठाकर उन्हें सख्त ताकीद कर दी कि हेमदत्त निकल न जाय।

कुएमें बैठे रहकर हेमदत्तने बड़ी भक्ति और श्रद्धाके साथ भक्तामरके दो काव्योंका स्मरण किया। उसके प्रभावसे चक्रेश्वरी देवी प्रगट हुई। उसने हेमदत्तके शरीरके सब बंधन खोल करके उसे खूब गहनोंसे सजाकर बहुत सुन्दर बना दिया। कुएका पानी भी देवीकी कृपासे घुटने प्रमाण हो गया। जिनभगवानके नाम-स्मरणसे जब संसारका कठिन बंधन भी क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है तब उसके सामने ऐसे तुच्छ बन्धनोंकी तो गिनती ही क्या है।

इसके बाद देवीने हेमदत्तसे कहा—महाशय, मैं अब राजाको जरा तकलीफ पहुँचाती हूँ। सो तुम जब भक्तामरके दो श्लोकों द्वारा जल मंत्रकर उसे राजा पर छींटोगे तब मैं उन्हें उससे मुक्त कर दूँगी। यह कहकर देवी राजाके पास गई और राजाको सहसा बीमार करके वह लोगोंसे बोली—"हेमदत्त सेठ यहाँ आकर अपना मंत्रा हुआ जल राजा पर छींटे तो बहुत शीघ्र आराम हो सकता है। इसके सिवा और उपाय करना व्यर्थ है।" देवीके कहे अनुसार हेमदत्त बुलवाये गये। उन्होंने अपना मंत्रा हुआ जल राजा पर छींटा। उसके बाद उन्हें देखते देखते आराम हो गया। यह देख राजा उठकर देवीके पाँवोंमें गिर पड़े और बोले—माँ! क्षमा करो, न जानकर ही मैंने आपका अपराध किया है। उत्तम पुरुष अज्ञानी और बालकों पर सदा क्षमा ही किया करते हैं।

यह कह कर राजाने देवीको प्रणाम किया। देवी राजाको आशिष देकर चली गई।

हेमदत्तका फिर वस्त्राभूषणसे खब सन्मान हुआ। धर्मकी खूब प्रभावना हुई। बहुतोंने जैनधर्म ग्रहण किया और जैनोंकी अपने धर्ममें श्रद्धा खूब दृढ़ हो गई।

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्।
बालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुबिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥ ३॥
वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र! शशाङ्ककान्तान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्तकालपवनोद्धतनक्रचक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥ ४॥

हिन्दी–पद्यानुवाद।

हूँ बुद्धिहीन फिर भी बुधपूज्यपाद,
तैयार हूँ स्तवनको निर्लज्ज होके।
है और कौन जगमें तज बालको जो—
लेना चहे सलिल-संस्थित चन्द्र-बिम्ब॥
होवे बृहस्पतिसमान सुबुद्धि तो भी,
है कौन जो गिन सके तव सद्गुणोंको।
कल्पान्तवायु-वश सिन्धु अलंध्य जो है,
है कौन जो तिर सके उसको भुजासे॥

अर्थात् हे देवों द्वारा पूजनीय चरण बुद्धिके न होते हुए भी मैं जो आपकी स्तुति करने चला हूँ, यह मेरी निर्लज्जता है। नाथ बालकको छोड़ कर और कौन जलमें पड़े हुए चन्द्रमाके प्रतिबिम्बको हाथोंसे पकड़नेकी सहसा इच्छा कर सकता है। अर्थात् मेरा भी यह प्रयत्न बालककी भाँति ही है।

हे गुण-समुद्र! बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् जन भी आपके चन्द्रमा-सदृश मनोहर गुणोंका वर्णन करनेको समर्थ नहीं। (तब मुझ सरीखे अल्पज्ञकी तो बात ही क्या है।) नाथ! प्रलयकालकी वायु द्वारा मगर-मच्छ आदि भयंकर जीवोंका समूह जिस समुद्रमें प्रचण्डता धारण किये हुए है–इधर उधर मुँह बाये लहरें ले रहा है, उसे भुजाओं द्वारा कौन तैर सकता है!

सुमतिकी कथा।

सुमति नामके एक महाजनने उक्त श्लोकोंकी आराधना द्वारा फल प्राप्त किया है। उसकी कथा इस प्रकार है—

भारतवर्षमें अवन्ति नाम एक प्रसिद्ध प्रांत है। वह बहुत सुन्दर, धन-धान्य आदिसे परिपूर्ण और बहुत समृद्धिशाली है। वहाँ एक सुमति नामका महाजन रहता था। वह बेचारा दरिद्री था।

एक दिन उज्जयिनीके वनमें पिहिताश्रवमुनि अपनी शिष्यमंडलीको लिए हुए आए। उनका आना सुनकर नगरीके सब लोग उनकी वन्दना करनेको गए। साथ ही सुमति भी गया। वहाँ धर्मोपदेश सुन कर उसे बहुत आनंद हुआ। इसके बाद उसने मुनिराजसे कहा—नाथ! दरिद्रता बहुत कष्ट देती है। यह जीवोंकी परम शत्रु है। मैं इसी दरिद्रताके कारण अत्यन्त कष्ट पा रहा हूं। खाने तकको मुझे बड़ी कठिनतासे प्राप्त होता है। आप दयालु हैं। मुझे कुछ उपाय बतलाइए, जिससे इस पापिनीसे मेरा पीछा छूटे। उसके दुःखभरे बचन सुनकर मुनिराज बोले—भाई! जो जैसा काम करता है उसका उसे वैसा फल भोगना ही पड़ता है। उसे कोई नहीं मेट सकता। परन्तु धर्मसेवनसे बहुतोंका हित हुआ देखा गया है, इस कारण तू भी उसका दृढ़-चित्तसे पालन कर। उससे पाप नष्ट होकर तुझे पुण्यकी प्राप्ति होगी। इसके साथ इतना और करना कि मैं जो तुझे दो श्लोक

और उनके साधनेकी विधि बतलाए देता हूँ, उन्हें तू प्रतिदिन जपा करना। इससे तेरी दरिद्रता नष्ट हो जायगी। यह कह कर मुनिराजने उसे भक्तामरके दो श्लोक और उनके मंत्र तथा साधनेकी विधि बतला दी। सुमति उन श्लोकोंको याद करके मुनिराजको वन्दना कर वहाँसे चला आया।

दूसरे दिन मंत्र साधनेकी इच्छासे सुमतिने कुछ महाजनोंके लड़कोंके साथ नाव द्वारा समुद्र—यात्रा की। भाग्यसे हवाकी विपरीत गति होनेके कारण उनकी नाव इधर उधर डुलने लगी। सबको अपने जीनेका सन्देह होने लगा। वे लोग घबरा कर अपने अपने देवकी आराधना करने लगे; परन्तु उससे उन्हें कुछ लाभ नहीं हुआ। आखिर नाव टूट—फूट कर डूब गई। भाग्यके विपरीत होने पर कभी सुख नहीं होता। इस महा संकटमें सुमतिको मुनिराजके सिखाये श्लोकोंकी याद आ गई। उसने उसी समय एक चित्त होकर उनका ध्यान किया। उसके प्रभावसे चक्रेश्वरीने आकर उसकी सहायता की। वह हाथोंसे तैर कर समुद्रके किनारे पर आ पहुँचा। देवी उसकी दृढ भक्ति देख कर बहुत संतुष्ट हुई। उसने उसे बहुमूल्य रत्न प्रदान किये। जिनभगवान्के गुण-गानसे दुस्तर संसाररूपी समुद्र भी जब तैर लिया जाता है, तब उसके सामने तुच्छ समुद्रका तैर लेना कोई आश्चर्यकी बात नहीं।

इसके बाद सुमति सकुशल अपने घर आ पहुँचा। देवीने उसे और भी खूब धन देकर कहा—"आपत्तिके समय मुझे याद करते रहना।" इतना कह कर वह चली गई।

भगवानकी स्तुतिके प्रभावसे सुमति खूब धनवान् हो गया। वह सब साहूकारोंमें प्रधान गिना जाने लगा। उसका राजसम्मान भी खूब होने लगा। दानियोंमें सबसे पहले उसीका नाम लिया जाने लगा।

सच है—पुण्यके प्रभावसे क्या नहीं होता। इसलिए जीव—मात्रको अपनी प्रवृत्ति अच्छे कामोंकी ओर अधिक लगानी चाहिए।

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश!
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगो मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम्॥ ५॥

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चारुचूतकलिकानिकरैकहेतु॥ ६॥

त्वत्संस्तवेन भवसन्ततिसन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम्॥ ७॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

हूँ शक्तिहीन फिर भी करने लगा हूँ,
तेरी, प्रभो! स्तुति, हुआ वश भक्तिके मैं।
क्या मोहके वश हुआ शिशुको बचाने,
है सामना न करता मृग सिंहका भी॥

हूँ अल्पबुद्धि, बुधमानवकी हँसीका
हूँ पात्र, भक्ति तव है मुझको बुलाती।
जो बोलता मधुर कोकिल है मधूमें,
है हेतु आम्रकलिका बस एक उसका॥

तेरी किये स्तुति विभो! बहु जन्मके भी,
होते विनाश सब पाप मनुष्यके हैं।
भौंरे समान अति श्यामल ज्यों अँधेरा
होता विनाश रविके करसे निशाका॥

मुनीश! मुझमें आपकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं है, तो भी मैं जो स्तुति करता हूँ, वह केवल आपकी भक्तिके वश होकर करता हूँ। प्रभो! अपनी शक्तिका विचार न करके भी क्या हरिण अपने बच्चेको बचानेके लिए सिंहके सामने नहीं होता? तब शक्तिके न रहते हुए भी आपकी स्तुति करना मेरे लिए कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

प्रभो! मेरा शास्त्र-ज्ञान बहुत थोड़ा है और इसीलिए विद्वानोंके सामने मैं हँसीका पात्र हूँ, तो भी आपकी भक्ति मुझे जबरन स्तुति करनेके लिए बाचाल कर रही है। क्योंकि जिस भाँति कोकिलाएँ वसन्तमें जो मधुर मधुर आलापती हैं, उसका कारण आम्र-मंजरी है उसी भाँति मेरे स्तुति करनेमें आपकी भक्ति कारण है।

नाथ! जिस भाँति सूर्यकी किरणों द्वारा सारे लोकमें फैला हुआ और भौंरोंके समान काला अन्धकार नष्ट हो जाता है, उसी भाँति आपकी स्तुति करनेसे जन्म-जन्ममें एकत्रित हुए जीवोंके पाप क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं।

सुधनकी कथा।

उक्त श्लोकोंकी आराधनाका फल शास्त्रार्थमें विजय प्राप्त करना है। इसका फल सुधन नामके एक सेठको मिला था। उसकी कथा नीचे लिखी जाती है—

पटनेमें एक सुधन नामका सेठ रहता था। वह बहुत धनी और दानी था। उसकी जिनधर्म पर बड़ी श्रद्धा थी। उसने एक बहुत विशाल रमणीय जिनमन्दिर बनवाया था। उसमें वह प्रतिदिन नियम पूर्वक जिनभगवानकी पूजा किया करता था।

एक दिन पटनेमें धूली और घासी नामके दो पाखण्डी कापालिक आए। उन्होंने अपनी नीच विद्याके बलसे नित्य-नये आश्चर्य दिखा दिखा कर सारे शहरको अपना भक्त बना लिया। शहरके छोटे मोटे सभी लोग उनकी पूजा करनेके लिए तीनों समय आने लगे।

एक दिन कापालिकने अपने एक शिष्यसे पूछा, शहरके सभी लोग यहाँ आते हैं या कोई नहीं भी आता है। शिष्यने उत्तर दिया प्रभो! आपकी भक्ति करनेके लिए आते तो प्रायः सभी हैं, पर हाँ केवल दो जने नहीं आते देख पड़ते। एक तो सुधन और दूसरा भीमराज। वे दोनों बड़े अभिमानी हैं। उनकी जैनधर्म पर बड़ी श्रद्धा है। इसलिए वे उसके सामने सभी धर्मोंको तुच्छ समझते हैं। सुन कर कापालिक क्रोधके मारे लाल हो उठा। उसने कहा, अच्छा देखूँगा उन लोगोंका धर्माभिमान! सब तो आकर मेरी भक्ति-पूजा करते हैं और उन्हें इतना गर्व जो मेरी विद्याकी भी वे कद्र नहीं करते!

रात हुई। सारा शहर निद्रादेवीकी गोदमें सुख भोग रहा था। उस समय कापालिकने अपने वीरोंको—पिशाचोंको बुला कर आज्ञा की कि जाकर सुधन और भीमराजके महलोंको पत्थर और धूलसे ऐसा पूर दो कि उनमें तिलमात्र भी खाली जगह न बच पावे, जिससे वे लोग बाहर न निकल कर भीतरके भीतर ही रह जायँ और अपने कियेका फल भोगें। पिशाचोंने वैसा ही किया। उनके महलोंको धूल और पत्थरोंसे खूब पूर दिया।

आकस्मिक अपने पर संकट आया देख कर सुधन और भीमराजको बड़ी चिंता हुई। परंतु उन्होंने इस विश्वास पर, कि धर्म दुःखमें सहायी होता है, कुछ विशेष कष्ट न मान कर भक्तामरका स्मरण करना शुरू कर दिया। उनकी अचल श्रद्धा देख कर चक्रेश्वरीने आकर उनसे कहा—तुम

किसी तरहकी चिन्ता न करो, धर्मके प्रसादसे सब अच्छा होगा। इतना कह कर उसने उनका सब विघ्न दूर कर दिया और उसके बदले कापालिककी शक्ति आजमानेके लिए उसके जितने भक्त थे, उनके घरोंको धूल और पत्थरोंसे पूर दिये। बातकी बातमें यह खबर कापालिकके पास पहुँची। उसने बहुत चेष्टायें कीं, पर किसी तरह वह अपने भक्तोंका विघ्न दूर नहीं कर सका। आखिर लज्जित होकर वह देवीके पांवोंमें पड़ा और अपने अपराधकी देवीसे क्षमा करा कर उसने जैनधर्म स्वीकार किया।

जिनभगवानकी स्तुतिका इस प्रकार अचिन्त्य प्रभाव देख कर बहुतसे मिथ्यादृष्टियोंने—जिनधर्मके द्वेषियोंने—भी मिथ्यात्व छोड़ कर पवित्र जिनधर्म स्वीकार किया। जैनधर्मकी बड़ी प्रभावना हुई। जो धर्म संसारके जीवमात्रका उपकारक है उससे क्या नहीं हो सकता है।

मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥ ८ ॥
आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥ ९ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

यों मान की स्तुति शुरू मुझ अल्प धीने;
तेरे प्रभाववश नाथ! वही हरेगी—

सल्लोकके हृदयको; जलबिन्दु भी तो
मोती समान नलिनीदलपै सुहाते ॥
निर्दोष दूर तव हो स्तुतिका बनाना,
तेरी कथा तक हरे जगके अघोंको ।
हो दूर सूर्य, करती उसकी प्रभा ही
अच्छे प्रफुल्लित सरोजनको सरोंमें ॥

नाथ ! यही समझ कर कम बुद्धि होने पर भी मैं जो आपकी स्तुति करता हूँ वह भी आपके प्रभावसे सज्जनोंके चित्तको तो हरेगी ही। क्योंकि कमलके पत्र पर पड़ी हुई जलकी बूँदें भी मोतीकी तरह सुन्दर दिख कर लोगोंके चित्तको हरती ही हैं।

प्रभो ! आपकी निर्दोष स्तुति तो दूर रहे, किन्तु आपकी पवित्र कथाका सुनना ही संसारके सब पापोंको नष्ट कर देता है। ठीक तो है—सूर्यके दूर रहनेपर उसकी किरणें ही सरोवरोंमें कमलोंको प्रफुल्लित कर देती हैं।

केशवदत्तकी कथा ।

उक्त श्लोकोंके मंत्रोंको जपनेसे केशव नामक एक महाजनके सब कष्ट दूर हो गए थे। उसकी कथा इस प्रकार है—

वसन्तपुरमें केशवदत्त नामक एक महाजन रहता था। वह निर्धन होकर मिथ्यात्वी था। एक दिन किसी मुनिराजसे उसने धर्मका उपदेश सुना। उसे सुन कर वह श्रावक हो गया। इसके बाद वह भक्तामरस्तोत्र सीख कर प्रतिदिन उसका बड़ी भक्तिके साथ पाठ करने लगा।

एक दिन केशवदत्त धन कमानेकी इच्छासे विदेशकी ओर चला। चलते चलते वह एक वनमें पहुँचा। वहाँ एक सिंहने उसे खा जाना चाहा। उस समय केशवने अपनी रक्षाका कुछ उपाय न देख कर भक्तामर-स्तोत्रकी आराधना करनी शुरू करदी। उसके प्रभावसे एकाएक

न जाने क्यों सिंह चिल्ला कर भाग खड़ा हुआ और केशवकी जान बच गई।

वहाँसे बच कर वह आगे बढ़ा। रास्तेमें उसे एक ठग मिला। ठगने उससे कहा—यहाँ एक रसकूप है। तुम उसमें उतर कर इस तूँबीको रससे भर लाओ। इस रसका यह माहात्म्य है कि उससे जो चाहो सो मिलता है। केशव बोला—भाई! तुमने कहा सो तो ठीक, पर कुएमें उतरा कैसे जायगा? उत्तरमें ठगने बड़ी नम्रतासे कहा—इसकी तुम कुछ चिन्ता न करो। मेरे पास एक मजबूत रस्सी है। उससे बाँध कर मैं तुम्हें उतार दूँगा और जब तुम तूँबीमें रस भरलोगे तब खींच लूँगा। वह बेचारा लोभमें पड़ कर ठगके झाँसेमें आ गया। ठगने उसकी कमरसे रस्सी बाँध कर उसे कुएमें उतार दिया, और जब उसने तूँबीमें रस भर लिया तब धीरे धीरे वह उसे ऊपर खींचने लगा। केशव लगभग किनारे पर आया होगा कि ठगने उससे कहा—ठहरो, जल्दी मत करो। पहले तूँबी मुझे देदो जिससे रस ढुलने न पावे। फिर तुम निकल आना। केशवने उसका कपट न समझ रसकी तूँबी उसे देदी। तूँबी उस ठगके हाथमें आई कि वह रस्सी छोड़कर भाग गया। बेचारा केशव धड़ामसे कुएमें जा गिरा। भाग्यसे वह सीधा गिरा, इससे उसके चोट तो विशेष न आई, पर भीतरकी गरमीसे उसका दम घुटने लगा। उसे वहाँ भक्तामरके पाठ करनेकी याद हो उठी। वह बड़ी श्रद्धाके साथ भगवानकी आराधना करने लगा। उसके प्रभावसे देवीने आकर उसे किनारे लगा दिया। यहाँ भी उसकी जान बच गई। उसे वहाँ देवीकी कृपासे कुछ रत्न भी प्राप्त हुए। वहाँसे वह आगे बढ़ा। रास्तेमें उसे साहूकारोंका एक संघ मिला, जो व्यापारकी

इच्छासे विदेश जा रहा था। केशव भी उसके साथ हो लिया। जब वे सब लोग एक घने जंगलमें पहुँचे, तो साथके लोगोंने केशवके रत्न छीन लेना चाहा। कारण, दर-असल वे साहूकार नहीं थे; किन्तु साहूकारके वेषमें डकैत थे। केशव पर फिर एक नई विपत्ति आई। पर उसे अपने धर्म पर गाढ़ श्रद्धा होनेके कारण उससे वह न डर कर एकामनसे भक्तामरकी आराधना करनेको बैठ गया। उसके प्रभावसे देवीने आकर अपनी मायासे सब डाकुओंको भगा दिया। यहाँसे जान लेकर केशव आगे बढ़ा, तो रास्ता ही भूल गया। बेचारा फिर बड़े संकटमें पड़ गया। सचमुच जब पापका उदय होता है, तब आपत्ति पर आपत्ति आती रहती हैं। एकसे छुटकारा हो नहीं पाता कि दूसरी सिर पर तैयार खड़ी रहती है। रास्तेमें उसे बड़ी प्यास लगी। वहाँ बड़ी दूर तक पानीका नाम तक नहीं था। प्यासके मारे वह छट-पटा उठा। पर करता क्या? उसे फिर सहसा स्तोत्र पाठ करनेकी याद हो उठी। उसने विचारा कि बिना पानीके जानके बचनेका सन्देह है। और जब मरना ही है, तो आकुलतासे अधीर होकर क्यों मरना? शान्तिसे धर्मकी आराधनापूर्वक मरना अच्छा है, जिससे कुगतिमें न जाना पड़े। इसके बाद वह भगवानकी आराधनामें लीन हो गया। उसके प्रभावसे झट देवीने आकर उसकी सहायता की। उसे पानी भी पीनेको मिल गया, उसकी जान भी बच गई और रास्ता भी उसे मालूम हो गया। वह वहाँसे आगे न जाकर घर लौट आया। उसे फिर धनकी खूब प्राप्ति हो गई। वह अपने धनको दान और हर एक धर्म-काममें खर्च करने लगा। उससे उसके पास दिन-दूना और रात-चौगुना धन बढ़ने लगा। यह सब धर्ममें अचल श्रद्धा रखनेका प्रभाव है। इसलिए भव्य पुरुषोंको धर्ममें सदा अपना मन लगाना चाहिए

और प्रतिदिन भक्तामरसे पवित्र स्तोत्रका पाठ करते रहना चाहिए। उसके प्रभावसे सब विघ्न-बाधाएँ देखते देखते नष्ट हो जाती हैं।

नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभीष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥ १०॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकरद्युतिदुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत॥ ११॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

आश्चर्य क्या भुवनरत्न, भले गुणोंसे;
तेरी किये स्तुति बने तुझसे मनुष्य।
क्या काम है जगतमें उन मालिकोंका,
जो आत्म-तुल्य न करें निज आश्रितोंको॥

अत्यन्त सुन्दर विभो, तुझको विलोक,
अन्यत्र आँख लगती नहिं मानवोंकी।
क्षीराब्धिका मधुर सुन्दर वारि पीके,
पीना चहे जलधिका जल कौन खारा॥

हे संसारके भूषण! हे जीवोंके स्वामी! इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं जो आपकी सत्यार्थ गुणों द्वारा स्तुति करनेवाले पुरुष संसारमें आप ही सरीखे हो जायँ! उस मनुष्यके संसारमें उत्पन्न होनेसे लाभ ही क्या जो अपने आश्रितोंको धन-वैभवसे अपने समान न बनाले?

नाथ! अनिमेष देखने योग्य आपके सुन्दर रूपको देख कर लोगोंके नेत्र दूसरी ओर जाते ही नहीं—उन्हें आपके सिवा और देवी-देवता नहीं सुहाते। भला, चंद्रमाके सदृश क्षीरसागरका निर्मल पानी पीकर लवण-समुद्रका खारा जल पीनेकी कौन इच्छा करेगा?

कमदी सेठकी कथा।

इन श्लोकोंकी आराधना द्वारा कमदी नामक सेठको जो फल प्राप्त हुआ, उसकी कथा नीचे लिखी जाती है–

अणहिल नामक एक शहर था। उसके राजाका नाम प्रजापाल था। वहाँ एक कमदी नाम महाजन रहता था। वह बड़ा दरिद्री था। एक दिन अणहिलके वनमें एक मुनिराज आये। कमदी उनकी वंदनाके लिए गया। वहाँ मुनिराज द्वारा भक्तामर-स्तोत्रका माहात्म्य सुन कर उसने उसे सीख लिया और प्रतिदिन वह उसकी आराधना करने लगा। जब उसका जाप्य पूरा हुआ, तब देवीने आकर उससे कहा–जिस बातकी तुझे जरूरत हो, उसे माँगले। मैं तेरी इच्छा पूरी कर दूँगी। कमदीने देवीसे कहा–माँ! मैं दरिद्रताके मारे बहुत कष्ट पा रहा हूँ, इसलिए मुझे धनकी बड़ी जरूरत है। सुन कर देवीने कहा– "अच्छी बात है। मैं आज साँझको तेरे घर पर कामधेनु बन कर आऊँगी। तू अपने घड़ोंमें मेरा दूध दुह लेना। वह सब दूध मेरे प्रसादसे सोना बन जायगा।" इतना कह कर देवी चली गई। सच है–ऐसा कौन असाध्य काम है, जिसे देवता लोग न कर सकते हों।

साँझ होते ही देवी अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार गायके रूपमें कमदीके घर आई। कमदीने उसके दूधसे कोई इकतीस घड़े भर लिए। वे सब फिर सोनेके बन गये। यह देख कर कमदी बड़ा खुश हुआ। इसके बाद उसने देवीसे प्रार्थना की कि देवि! आपकी कृपासे मुझे धन तो बहुत मिल गया, पर एक बात तब भी हृदयमें खटकती है। वह यह कि इतना धन होने पर भी जिस घरमें धर्मात्मा पुरुषोंके चरण न पड़ें तो वह घर एक तरह अपवित्र ही है। मेरी इच्छा है कि

मैं एक दिन यहाँके सब धर्मात्माओंका निमंत्रण करूँ। इसलिए एक बार तुम और यहाँ इसी रूपमें आनेकी कृपा करो तो बहुत अच्छा हो। 'तथास्तु' कह कर देवी चली गई।

अवसर देख कर कमदीने सारे शहरका निमंत्रण किया। महाराज प्रजापाल भी निमंत्रित किये गये। सुन्दरसे सुन्दर और स्वादिष्टसे स्वादिष्ट वस्तुएँ तैयार की गईं। कामधेनुके दूधकी खीर बनवाई गई। फिर सबको बड़े आदर-विनयसे भोजन कराया गया। भोजन करके सब बड़े प्रसन्न हुए और शतमुखसे उस भोजनकी तारीफ करने लगे।

इसके बाद कमदीने देवीकी कृपासे प्राप्त हुआ धन महाराजको दिखलाया। महाराज कमदीके पास इतना अटूट धन देख कर बड़े खुश हुए, और यह कह कर वे चल गये कि इस धनको पात्र-दान, विद्या-दान आदि परोपकारके कामोंमें तथा अपने लिये खूब खर्च करना। यह सब धर्ममें तत्पर रहनेका फल है। इसलिए भव्य पुरुषोंको धर्मकी ओर सदा चित्त लगाना चाहिए।

यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

जो शान्तिके सुपरमाणु प्रभो, तनूमें
तेरे लगे, जगतमें उतने वही थे।
सौन्दर्यसार, जगदीश्वर, चित्तहर्ता,
तेरे समान इससे नहिं रूप कोई ॥

हे त्रिभुवनके एक भूषण ! जिन राग-रहित तेजस्वी परमाणुओंके द्वारा आपका शरीर बना है, वे परमाणु संसारमें उतने ही हैं । यही तो कारण है कि संसारमें आपके समान सुन्दर किसी दूसरेका रूप ही नहीं है ।

सुबुद्धिकी कथा ।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे सुबुद्धि नामके मंत्रीने फल प्राप्त किया था । उसकी कथा नीचे लिखी जाती है—

भारतवर्षमें अंगदेश बड़ा प्रसिद्ध देश है । आस-पासके छोटे छोटे पर बहुत सुन्दर गाँवोंसे वह शोभित है । उसकी प्रधान राजधानी चम्पापुरी है । उसका राजा बहुत दानी, बुद्धिमान् और नीतिज्ञ था । उसका नाम कर्ण था । उसका मंत्री भी बड़ा गुणवान् और राजनीतिका अच्छा जानकार था । उसका नाम सुबुद्धि था । वह जिनधर्मका अतिशय भक्त था । भक्तामर–स्तोत्र पर उसकी गाढ़ श्रद्धा थी, इसलिए वह उसकी निरंतर आराधना किया करता था ।

एक दिन एक धूर्त कापालिक बहुरूपियेका रूप धारण कर राज-सभामें आया और अपनी विद्याकी करामातसे वह कृष्ण, ब्रह्मा, शंकर, गणेश, कार्तिकेय, बुद्ध, क्षेत्रपाल आदिका रूप बनाकर नाचने लगा और सारी सभाको रंजायमान करने लगा । सभाके लोग उसकी कुशलता देखकर बहुत खुश हुए और उसकी तारीफ करने लगे ।

यह सब तमाशा दिखा कर अन्तमें उसने जिनभगवानका रूप लेना चाहा । सुबुद्धिको इससे बहुत दुःख हुआ । अपने धर्मकी इस तरह हँसी होना उसे सह्य नहीं हुआ । परन्तु वह करता भी क्या ? राजाके सामने वह बोल भी नहीं सकता था । और वह तो फिर एक विनोद था—सबके चित्तरंजन करनेका दृश्य था । इसलिए वह कुछ कहता भी, तो उसकी सुनता कौन ? उसने अपने धर्मकी रक्षाका कुछ

उपाय न देख मन लगा कर भक्तामरकी खूब आराधना की। धर्मके अचिन्त्य प्रभावसे उसी समय चक्रेश्वरीने प्रगट होकर उस धूर्त्त कापालिकसे कहा—

"पापी यह तूने क्या ढोंग रचा है? क्यों इन बेचारे भोले लोगोंको अपनी मायाजालमें फँसा रहा है? तू नहीं जानता कि जिनभगवानका वेष उन्हींको शोभा देता है। दूसरा उसे कभी नहीं धारण कर सकता। क्या कभी हाथीका भार बैल भी उठा सकता है? ध्यान रख, जो मायासे ठगे हुए जिन-रूपको ग्रहण कर फिर उसे छोड़ देते हैं, वे नियमसे दुस्तर संसाररूपी समुद्रमें अनन्तकालके लिए कूद पड़ते हैं।" इस प्रकार उसकी खूब भर्त्सना करके देवी बोली—पापी यदि तू अपने जीनेकी इच्छा करता है, तो इस धर्मात्मा सुबुद्धिके पाँवोंमें पड़ कर इससे क्षमा करा। क्योंकि इसीकी कृपासे आज पवित्र जिनधर्मकी हँसी होनेसे बची है। सिवा इसके तुझसे पापीकी कुशल नहीं है।

देवीके अप्रतिम तेजको देख कर कापालिकके तो होश उड़ गए। उसका सारा शरीर काँप उठा। देवीके कहे अनुसार वह हाथ जोड़-कर सुबुद्धिके पाँवोंमें पड़ा और अपने अपराधकी क्षमा करा कर आगे ऐसे अनर्थके न करनेकी उसने प्रतिज्ञा की।

मंत्रीने धर्म-प्रभावनाका अच्छा अवसर देख कर भक्तामर-स्तोत्रका प्रभाव सब लोगोंको कह सुनाया। विद्वान् लोग ऐसे मौकेको खोते नहीं है। क्योंकि वे समयके जाननेवाले होते हैं। सुबुद्धिके उपदेशका सारी सभा पर बहुत अच्छा असर पड़ा। राजा, कापालिक, तथा और बहुतसे लोग भक्तामरका प्रभाव सुन कर और आँखोंसे प्रत्यक्ष देख कर जैनी बन गए। धर्मकी खूब प्रभावना हुई।

इस प्रकार भक्तामरका प्रभाव जान कर जो भव्य पुरुष प्रतिदिन इसकी भक्तिभाव और श्रद्धाके साथ आराधना करते हैं, वे मनोवांछित सुखको पाते हैं। क्योंकि 'धर्मः सर्वसुखाकरः' अर्थात् धर्म सब सुखोंकी खान है।

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डु पलाशकल्पम् ॥ १३ ॥
सम्पूर्णमण्डलशशाङ्ककलाकलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति ।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥ १४ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

तेरा कहाँ मुख सुरादिक नेत्ररम्य,
सर्वोपमान-विजयी, जगदीश, नाथ,
त्योंही कलंकित कहाँ वह चन्द्र-बिम्ब,
जो हो पड़े दिवसमें द्युतिहीन फीका ॥
अत्यन्त सुन्दर कलानिधिकी कलासे,
तेरे मनोज्ञ गुण नाथ, फिरें जगोंमें ।
है आसरा त्रिजगदीश्वरका जिन्होंको,
रोके उन्हें त्रिजगमें फिरते न कोई ॥

हे गुण-समुद्र! सब उपमानोंको जीतनेवाला—इतना सुन्दर कि संसारमें जिसकी उपमाके योग्य कोई पदार्थ ही नहीं है, और देव, मनुष्य, विद्याधर, धरणेन्द्र आदिके नेत्रोंको अपनी ओर आकर्षित करनेवाला—जिसे ये भी बड़ी उत्कण्ठतासे देखते हैं, ऐसा आपका त्रिभुवन-सुन्दर मुख कहाँ? और कलंकयुक्त चन्द्रमा कहाँ? जो कि दिनमें फीका पड़ जाता है—शोभारहित हो जाता है। अर्थात्

बहुतसे लोग आपके मुखको चन्द्रमाकी उपमा देते हैं, पर वह ठीक नहीं है। कारण आपकी शोभा स्थाई है और उसकी अस्थाई। इसके सिवा वह कलंकी है और आप निष्कलंक।

हे प्रभो, आपके पूर्ण चन्द्रमाकी कलाके समान निर्मल गुण तीनों लोकोंको भी लाँघ चुके हैं–सर्वत्र ही आपके गुण फैल गए हैं। सो ठीक ही है जो इन्द्र, नरेन्द्र सरीखे त्रिभुवनके मालिकोंके भी मालिकके आश्रित हैं, उन्हें अपनी इच्छानुसार जहाँ तहाँ घूमते रहते कौन रोक सकता है?

डाही श्राविकाकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मंत्रोंकी आराधनासे एक डाही नामकी श्राविकाको फल प्राप्त हुआ है। उसकी कथा नीचे लिखी जाती है—

पटनामें एक सेठ रहता था। उसका नाम सत्यक था। वह बड़ा सत्यवादी था। उसके एक लड़की थी। वह बहुत सुन्दर थी। उसका नाम डाही था। एक दिन सत्यक हेमचंद्र मुनिराजकी वन्दनाके लिए गया। काललब्धिकी प्रेरणासे उसके साथ उसकी लड़की डाही भी गई। मुनिराजने सत्यकको देव–पूजाका माहात्म्य सुनाया। उससे वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने मुनिराजके पास प्रतिदिन देव-पूजा करनेकी प्रतिज्ञा ली। साथ ही डाहीने भी वही प्रतिज्ञा ग्रहण की और नियम लिया कि देव-पूजा किये बिना मैं भोजन नहीं करूँगी। इसके सिवा दोनों भक्तामर–स्तोत्रके नित्य पाठ करनेकी प्रतिज्ञा ग्रहण कर और मुनिराजको नमस्कार कर अपने घर चले आए।

डाहीके ब्याहका समय आया। वह भृगुकच्छ नामक शहरके रहनेवाले धनदत्त सेठसे ब्याही गई। सुसराल जाते समय रास्तेमें एक तालाबके किनारे पर विश्रामके लिए पड़ाव किया गया। भोजनकी तैयारी हुई। उत्तम और सुस्वादु भोजन तैयार किया गया। नव वधूसे

भोजन करनेकी प्रार्थना की गई। डाहीने कहा कि मुझे जिन-पूजा करनेकी प्रतिज्ञा है और मैं अपने पासकी प्रतिमा पिताजीके वहीं भल आई हूँ। इसलिए जब तक पूजनका योग न मिलेगा तब तक मैं भोजन नहीं करूँगी। शास्त्रोंमें कहा है कि "जो देव-पूजा और गुरुओंकी सेवा न करके भोजन करते हैं वे पापी हैं।" नव वधूकी आश्चर्य-भरी प्रतिज्ञा सुन कर उन लोगोंको बहुत दुःख हुआ। वे कुछ भी नहीं बोल सके—उन्हें चुप रह जाना पड़ा। इधर डाही उन्हें यों कह कर आप भक्तामरकी आराधना करने लगी। उसने अत्यन्त भक्ति और श्रद्धासे भगवानकी आराधना की। उसकी भक्तिके प्रसादसे देवीने प्रत्यक्ष होकर डाहीको एक सुन्दर फूलमाला और गुरुपादुका देकर कहा—पुत्री! यह माला बड़ी पवित्र और बहुत फलकी देनेवाली है। भृगु-कच्छमें मुनिसुव्रत भगवानकी एक प्रतिमा है, उसके चरणोंका स्पर्श होनेसे यह माला रत्नोंकी बन जायगी और जब तू इसे अपने गलेमें पहनेगी तब इसके बीचकी मणिसे श्रीपार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमा प्रगट होगी। इस समय तू इस गुरुपादुकाको गुरुकी जगह मान कर पूजा कर आहार कर ले। क्योंकि बन्धका कारण तो अपना भाव है। जैसा भाव होगा वैसा ही तो बंध होगा।

इतना कह कर देवी चली गई। डाहीने गुरुपादुकाकी पूजा-वंदना कर भोजन किया। पश्चात् सब अपने घर पर आ गये। देवीके कहे माफिक डाहीने आकर वह माला भगवानके चरणों पर चढ़ाई। वह रत्नकी माला बन गई। इसके बाद डाहीने जब उसे कण्ठमें पहनी तब उसमेंसे पार्श्वनाथकी प्रतिमा भी प्रगट हो गई। यह देख कर डाही बहुत प्रसन्न हुई। सच है—पुण्यवानोंके लिए कोई वस्तु अप्राप्य नहीं होती। बालिकाने इस घटनाका हाल और स्तोत्रका माहात्म्य सबको

कह सुनाया । भगवद्भक्तिका ऐसा प्रभाव सुन कर बहुतोंने जैनधर्म ग्रहण किया ।

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन
किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥

हिन्दी–पद्यानुवाद ।

देवाङ्गना हर सकीं मनको न तेरे,
आश्चर्य नाथ, इसमें कुछ भी नहीं है ।
कल्पान्तके पवनसे उड़ते पहाड़,
पै मन्दराद्रि हिलता तक है कभी क्या ?

नाथ ! इसमें कोई आश्चर्य नहीं जो देवांगनाएँ आपके मनमें रंचमात्र भी विकार पैदा नहीं कर सकीं; क्योंकि प्रलयकालके वायु द्वारा बड़े बड़े पर्वत चल सकते हैं, पर सुमेरुको वह कभी चलायमान नहीं कर सकता ।

महीपालकी कथा ।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे अयोध्याके राजा महीपालको लाभ हुआ था । उनकी कथा इस प्रकार है—

भारतवर्षमें कोशल एक प्रसिद्ध देश है । वह वन, सरोवर, नदी, आदिसे युक्त है । उसमें अनाथोंके लिए अन्नक्षेत्र, प्यासोंके लिए पौ आदिका प्रत्येक शहरमें अच्छा प्रबंध है । उसकी प्रधान राजधानी अयोध्या है । वह बहुत प्रसिद्ध और सुन्दर पुरी है । उसमें अच्छे अच्छे विद्वान् और शूरवीरोंका निवास है । वह उन विशाल महलोंसे, जो ध्वजाएँ और तोरणोंसे बहुत सुन्दरता धारण किए हुए हैं, शोभित है ।

उसके राजा महीपाल थे। वे बहुत गुणवान्, नीतिके जाननेवाले, और बड़े प्रजाप्रिय थे। भाग्यसे उन्हें एक पिशाच लग गया। उसके दूर करनेका बहुत प्रयत्न किया गया; परन्तु किसीके द्वारा उन्हें लाभ नहीं पहुँचा। एक दिन राजमंत्री, गुणसेन मुनिराजके पास गया और उनसे उसने प्रार्थना की—प्रभो! मेरे महाराजको एक पिशाच लग गया है। वह उन्हें बहुत तकलीफ दिया करता है। कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे उनका दुःख दूर हो जाय। उत्तरमें मुनिराजने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर कहा कि अच्छी बात है, कल बतलायँगे। मंत्री उनका उत्तर पाकर चला आया।

रातमें मुनिने भक्तामरके दो श्लोकोंकी आराधना की। उसके प्रभावसे देवीने प्रत्यक्ष होकर कहा—मुनीश्वर! भक्तामर काव्यके द्वारा मंत्रा हुआ जल राजाको पिलाने और उसी जलको उनकी आँखों पर छींटनेसे उन्हें शीघ्र ही आराम हो जायगा।

दूसरे दिन मंत्री फिर मुनिके पास आया। मुनिने वे सब बातें मंत्रीसे कहीं; और मंत्रीने जाकर वह हाल राजासे कहा। सुन कर राजा बहुत खुश हुए। उन्होंने सब लोगोंके सामने मुनिराज द्वारा उस प्रयोगको करवाया। मुनिराजने ज्यों ही वह जल राजाको पिला कर उनकी आखों पर छिड़का त्यों ही वह पिशाच चिल्ला कर भाग खड़ा हुआ। राजा स्वस्थ हो गए।

भक्तामरका ऐसा अचिन्त्य प्रभाव देख कर उस समय वहाँ जितने लोग उपस्थित थे, उन पर उसका बहुत प्रभाव पड़ा। सबकी जिन-धर्म पर बड़ी श्रद्धा हो गई। उनमें बहुतोंने जैनधर्म स्वीकार किया। जैनधर्मकी बड़ी प्रभावना हुई।

निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः॥ १६॥
नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके॥ १७॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

बत्ती नहीं, नहिं धुआँ, नहिं तैलपूर,
भारी हवा तक नहीं सकती बुझा है।
सारे त्रिलोक बिच है करता उजेला,
उत्कृष्ट दीपक विभो, द्युतिकारि तू है॥
तू हो न अस्त, तुझको गहता न राहु,
पाते प्रकाश तुझसे जग एक साथ।
तेरा प्रभाव रुकता नहिं बादलोंसे,
तू सूर्यसे अधिक है महिमानिधान॥

हे नाथ! आप सारे संसारके प्रकाशित करनेवाले अपूर्व दीपक हैं। वह इस तरह कि दूसरे प्रदीपोंमें बत्तीमें धुआँ निकलता रहता है, और आपकी वर्त्ति (मार्ग) निर्धूम-पापरहित है-निर्दोष है। उनमें तेलकी आवश्यकता रहती है, और आपके लिए उसकी कुछ जरूरत नहीं। वे एक बहुतही थोड़ी जगहको प्रकाशित करते हैं, और आप तीन जगत्के प्रकाशित करनेवाले हैं। इसके सिवा और और प्रदीप एक साधारण हवाके झकोरोंसे बुझ जाते हैं, और आपका तो बड़े बड़े पर्वतोंको हिला देनेवाली हवा भी कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

हे मुनीन्द्र! आपकी महिमा सूर्यसे भी कहीं बढ़कर है। देखिए, सूर्यको राहु ग्रस लेता है; परंतु आप कभी उसके ग्रास नहीं बने। सूर्य दिनमें क्रम क्रमसे और मध्य-

लोकहीमें प्रकाश करता है, और आप सदा, एक साथ और तीनों लोकोंको प्रकाशित करते हैं। सूर्यके प्रभावको-तेजको बादल ढक देते हैं, और आपका प्रभाव किसीसे नहीं ढका जा सकता।

केलिप्रियकी कथा।

इन श्लोकोंके मंत्रोंकी आराधनासे दूसरे मतोंका प्रभाव अपने पर नहीं पड़ पाता। उसकी कथा इस प्रकार है—

एक सगरपुर नामक शहर है। उसके राजाका नाम भी सगर है। राजा बड़े पराक्रमी और तेजस्वी हैं। उन्होंने अपने तेजसे शत्रुओंको पराजित कर दिए हैं। उनका केलिप्रिय नामका एक पुत्र था। वह बड़ा व्यसनी और पक्का नास्तिक था। उसे धर्म—कर्म पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। उसके पिता उसे बहुत समझाते थे; परंतु उसके हृदय पर उसका कुछ असर नहीं पड़ता था। वह कहता था—शरीरसे भिन्न न कोई जीव—आत्मा है, और न पुण्य पाप ही कोई चीज है। इसलिए जीवोंको स्वच्छन्द होकर सुख भोगना चाहिए। यह जीवन सुख भोगनेके लिए ही है।

राजा उसका इस तरह सुमार्ग पर आना असंभव समझ एक दिन अपने गुरु गुणभूषणके पास गए और उनसे उन्होंने पुत्रका सब हाल कहा। गुरुने राजाको समझाया कि तुम इसकी कोई चिन्ता न करो। हम उसे समझा लेंगे। राजा संतोषजनक उत्तर पाकर अपने महल लौट आये।

इस बातको कुछ दिन बीत गए। एक दिन सुयोग देख कर मुनिने भक्तामरके काव्यकी आराधना की। उसके प्रभावसे चक्रेश्वरी देवीने प्रत्यक्ष होकर कहा—महाराज! आज्ञा कीजिए। मुनि बोले—देवी! तुम

जानती हो, राजाका पुत्र नास्तिक हो गया है। उसका किसी धर्म पर विश्वास नहीं है। इसके अतिरिक्त वह व्यसनी भी है। इससे राजा बहुत दुखी हैं। इस कारण तुम उसे एक दिन अपनी माया द्वारा नरककी हालत दिखलाओ। उसका उसके चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ेगा और वह सुमार्ग पर भी आ जायगा।

एक दिन राजकुमार भूला—भटका मुनिके स्थानकी ओर आ निकला। संध्याका समय था। जाकर वह मुनिराजको आश्चर्य-भरी दृष्टिसे देखने लगा। इतनेमें उसकी नजर दूसरी ओर पड़ी। वह उस ओर देख कर काँप उठा। उधर उसने एक विचित्र ही घटना देखी। उसने देखा कि किसीका मुँह बड़ा भयंकर है, किसीका पेट बहुत मोटा है, किसीके तीखे और भयानक दाँत हैं, किसी की आँखें बड़ी बेढंगी हैं, किसीकी एकही टाँग है, किसीका एकही हाथ है; किसीके हाथोंमें डरावने शस्त्र हैं, कोई मारो मारो चिल्ला रहा है, कोई किसीको बांध रहा है, कोई मार-काट कर रहा है, कोई किसीको निर्दयताके साथ घानीमें पेल रहा है, कोई किसीको भट्टीमें झोंक रहा है, कोई किसीको तेलकी गरम गरम कढ़ाईमें ढकेल रहा है, कोई किसीको लोहा गाल गाल कर जबरन पिला रहा है, कोई किसीको करौंतीसे काट रहा है, कोई किसीको भाड़में भून रहा है, कोई शूली पर चढ़ाया जा रहा है, कोई फाँसी लटकाया जा रहा, है, कोई काँटोंकी बाड़में फैंका जा रहा है, कोई लाल लाल तपे हुए लोहेके खंभोंसे आलिंगन कराया जा रहा है, कोई सिंहके मुखमें फैंका जा रहा है, कोई राक्षसोंके हाथ सौंपा जा रहा है, कोई बड़े बड़े ऊँचे पहाड़ों परसे नीचे ढकेला जा रहा है, किसीके तीखी तलवारसे तिलके बराबर छोटे छोटे टुकड़े किये जा रहे

हैं, किसीको सँड़सीसे मुँह फाड़ फाड़ कर खून पिलाया जा रहा है, और कोई आगमें भूना जा रहा है! इस प्रकार आश्चर्य-भरी घटनाको देखते ही राजकुमार डरके मारे चिल्ला उठा। भयसे उसकी चेतना लुप्त होने लगी। वह गश खाकर जमीन पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद सायं-कालीन ठंडी हवाके लगनेसे उसे कुछ होश हुआ। उसने आँख खोल कर देखा तो उसे वहाँ सिवा मुनिके और कोई नहीं दीखा; पर तब भी वह भयके मारे काँप रहा था।

मुनिने उसकी यह हालत देख कर उससे इस प्रकार डर जानेका कारण पूछा। उसने वहाँ जो कुछ देखा था वह सब मुनिसे कह दिया। मुनिने कहा—संभव है, यह सब भूतोंकी लीला हो। बिना उनके ऐसा और कौन कर सकता है। इसके बाद मुनिने उसे उपदेश दिया, धर्मका स्वरूप समझाया, पुण्य-पापका फल कहा, और आत्मा और लोक-परलोकका अस्तित्व सिद्ध कर बताया। राजकुमार पर मुनि-राजके उपदेशका बहुत प्रभाव पड़ा। उससे वह चार्वाक मतको छोड़ कर जैनी बन गया। इसके बाद वह मुनिराजको नमस्कार कर अपने महल लौट आया।

नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं
गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति
विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कबिम्बम् ॥ १८ ॥

हिन्दी–पद्यानुवाद।

मोहान्धकार हरता, रहता उगा ही,
जाता न राहु-मुखमें, न छुपे घनोंसे;

अच्छे प्रकाशित करे जगको, सुहावे,
अत्यन्त कान्तिधर नाथ, मुखेन्दु तेरा ॥

हे नाथ! आपका अत्यन्त कान्तिमान मुख-कमल सारे संसारको प्रकाशित करनेवाला अपूर्व चन्द्रमा है—चन्द्रमासे कहीं बढ़कर है; क्योंकि चन्द्रमाका उदय निरन्तर नहीं रहता, पर आपका मुख-चन्द्र सदा उदित रहता है। चन्द्रमा अन्धकार नष्ट कर सकता है, पर मोहान्धकार नहीं; और आपका मुख-चन्द्र दोनोंको नष्ट करनेवाला है। चन्द्रमाको राहु और मेघ धर दबाते हैं, पर आपके मुख-चन्द्रका ये कुछ नहीं कर सकते।

आछंड मंत्रीकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रसे सब प्रकारके दोष नष्ट होते हैं। इसका प्रभाव बतलानेके लिए इसकी कथा लिखी जाती है—

गुजरात देशके अन्तर्गत पाटन नामका एक मनोहर शहर है। उसके राजाका नाम कुमारपाल है। राजमंत्रीका नाम आछंड है। वह बुद्धिमान और गुणज्ञ है। उसकी जिनधर्म पर बहुत श्रद्धा है। वह तीनों काल भक्तामर-स्तोत्रकी अत्यन्त भक्ति और श्रद्धाके साथ पाठ किया करता है।

राजा उसकी राजभक्ति पर बहुत प्रसन्न थे। इसलिए उन्होंने मंत्रीके गुणों पर मुग्ध होकर उसे पुरस्कारके रूपमें धनशाली लाड़देशका राज्य दे दिया। आछंड उसका नीतिके साथ पालन करने लगे।

एक बार आछंडको दूसरे देश पर चढ़ाई करके बाहर जाना पड़ा। रास्तेमें भाग्यसे उनकी सेना मार्ग भूल कर एक बहुत ही भयानक, और सिंह, व्याघ्र, चीते, सूअर आदि हिंस्र जीवोंसे भरे हुए वनमें जा निकली। इस आकस्मिक विपत्तिके आनेसे उनकी सेनाके प्राण मुट्ठीमें आ गए। मंत्री महाशयको भी बहुत चिन्ता हुई; पर केवल चिन्ता करनेसे लाभ क्या हो सकता था? आखिर उन्होंने यह विचार

कर कि, सब ओरसे निराश हुए जीवोंको धर्म ही एक आशास्थल रह जाता है, 'नित्योदयं' इस श्लोककी समंत्र आराधना की। उसके प्रभावसे एक देवसुंदरीने आकर मंत्रीको चन्द्रकान्तमणि और विष नष्ट करनेवाला एक रत्न दिया, और कहा कि इसके प्रभावसे तुम्हें रास्ता मिल जायगा। इसके अतिरिक्त और कभी तुम्हें कष्ट उठाना पड़े तो तुम मुझे याद करना। इतना कह कर देवी अपने स्थान पर चली गई।

उस मणिके प्रभावसे वे अपने परिचित रास्ते पर आ पहुँचे। वहाँसे आगे चल कर उन्होंने बड़े बड़े बलवान राजोंको पराजित किया, अनेक देश अपने वश किये और अन्तमें वे एक बड़े भारी अभिमानी और पराक्रमी मलय नामके राजाको जीत कर बहुत कुछ सम्पत्ति और चतुरंग सेना-सहित अपने राज्यमें लौट आए। इसके बाद उन्होंने पवित्र आशीर्वादकी इच्छासे अपनी माताके पास जाकर माताको प्रणाम किया।

माता पुत्रके सुख-पूर्वक लौट आनेसे बहुत प्रसन्न हुई। वह पुत्रको आशिष देकर बोली—पुत्र! इसमें कोई संदेह नहीं कि तुम बड़े बलवान हो, पर तुम्हारे ऐसे प्रचंड बलको देख कर एक बात बहुत खटकती है। वह यह कि तुमने अभी तक जितने राजोंको जीते हैं, वे सब साधारण राजे हैं। निर्बलोंको पराजित करनेसे महत्व प्रगट नहीं होता। वह बल ही क्या, जिससे वनमें मृगोंको मारनेवाला केसरी सिर पर खड़ा रहे और उसका कुछ प्रतिकार न किया जाकर छोटे छोटे जीव मारे जायँ। तुम्हारे सिर पर भी अभी एक बड़ा बलवान राजा खड़ा है। वह तुम्हारा बड़ा भारी दुश्मन है। तुम्हें उचित है कि तुम उसे पराजित करके अपने वश करो। वह भृगुकच्छ देशका स्वामी पृथ्वीसेन है।

माताकी आज्ञा स्वीकार कर आछंड उसी समय शत्रुपर धावा करनेके लिए अपनी बहुतसी सेनाको लेकर चल पड़े। उनकी सेना इतनी थी कि उसके भारसे पृथ्वी भी काँपती थी।

पृथ्वीसेनको आछंडकी चढ़ाईका हाल मालूम होते ही वे भी युद्धके लिए तैयार हो गए। दोनों ओरकी सेनाकी मुठभेड़ हुई। घोर युद्ध मचा। हजारों वीर मारे गए। खूनकी नदी बह निकली। कई दिनोंतक युद्ध होता रहा। आखिर विजय-लक्ष्मी आछंडको प्राप्त हुई। उन्होंने एक बड़े भारी शत्रुको पराजित कर पृथ्वी पर अपना प्रभाव खूब फैला दिया। सच है—बलवानसे निर्बल पराजित होते ही हैं।

इसके बाद आछंड बड़े बाजे-गाजेके साथ वन्दियों द्वारा अपना यशोगान सुनते हुए अपनी राजधानी लौट आए। प्रजाने उनका बहुत सम्मान किया, खूब उत्सव मनाया।

देखिए! कहाँ तो मंत्रीपद! कहाँ छोटेसे राज्यका मिलना! और कहाँ इतने बड़े भारी शत्रुका वश करना! यह सब भक्तामर सदृश पवित्र स्तोत्रकी आराधनाका फल है। जो भव्य ऐसे पावन स्तोत्रकी प्रतिदिन भक्ति और श्रद्धासे आराधना करते हैं, उनके लिए संसारमें कोई वस्तु कष्ट-प्राप्य नहीं है।

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः॥ १९॥

हिन्दी–पद्यानुवाद।

क्या भानुसे दिवसमें, निशिमें शशीसे,
तेरे प्रभो, सुमुखसे तम नाश होते।

अच्छी तरा पक गया जग-बीच धान,
है काम क्या जल भरे इन बादलोंसे ॥

प्रभो ! जब आपका मुख-चन्द्र ही अन्धकारको नष्ट कर सकता है, तब रातमें चन्द्रमाका और दिनमें सूर्यका काम ही क्या है ? कारण संसारमें धानके खेतोंके पक चुकने पर जलके भरे हुए बादलोंसे कोई लाभ नहीं।

लोकपालकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे सब उपसर्ग नष्ट होते हैं, उसकी कथा इस प्रकार है—

भारतवर्षमें विशाला नामकी एक रियासत है। वह छोटी है, पर बहुत सुन्दर है। उसमें सेठ–साहूकारोंके बड़े बड़े महल हैं। अपनी सुन्दरतासे वह स्वर्गकी शोभाको भी नीचा दिखाती है।

उसमें एक धनी साहुकार रहता था। उसका नाम लक्ष्मण था। वह बहुत बुद्धिमान, सदाचारी और गुणी था। उसने अपने गुरु श्रीचन्द्रकीर्ति मुनिसे भक्तामर, उसके मंत्र, और उसकी आराधना-विधि सीखी थी।

एक दिन लक्ष्मण बड़े भक्ति-भावसे स्तोत्रकी आराधना कर रहा था। उसके प्रभावसे एक देवी, जो कि सूर्यके तेजसे भी कहीं अधिक तेजस्विनी थी, आई। उसने लक्ष्मण पर प्रसन्न होकर उसे चन्द्रमाके आकारका एक कान्तिशाली रत्न दिया। सच है–जब देवता प्रसन्न होते हैं तब वे कुछ न कुछ अमोल वस्तु देते ही हैं। इसके बाद देवीने उससे कहा—

“रातमें मंत्र पढ़ कर इस रत्नको आकाशमें फेंकनेसे यह चन्द्रमाका काम देगा।” देवी इतना कह कर अपने स्थान पर चली गई।

एक दिन विशालके राजा लोकपाल शत्रुको जीता पकड़लानेकी इच्छासे सेना लेकर रातहीमें शत्रु पर जा चढ़े। रास्तेमें घोर अंधकारके कारण सारी पृथ्वी अन्धकारमय हो रही थी। ऐसी दशामें महाराजको एक पैर भी आगे चलना कठिन हो गया। उनकी सब सेना थोड़ी दूर जाकर अन्धकारके कारण रास्ता दिखाई न पड़नेसे एक जगह खड़ी हो गई।

लक्ष्मणके पास देवीका दिया हुआ वह महारत्न था। उसे उसने भक्तामरके द्वारा मंत्र कर आकाशमें फेंका। देखते देखते संसारको प्रकाशित करनेवाले चंद्रमाका उदय हो गया। एकाएक इस आश्चर्यको देख कर राजा मनमें बहुत प्रसन्न हुए। लक्ष्मणने उनकी बड़े मौके पर सहायता की। उससे महाराजने संतुष्ट होकर लक्ष्मणको अपने राज्यका आधा हिस्सा दे डाला।

इसके बाद महाराजने आगे बढ़ कर दिग्विजय किया। बड़े बड़े बलवान शत्रुओंको उन्होंने अपने वश किए और फिर अतुल सम्पदाके साथ वे अपनी राजधानीमें लौट आए।

जो लोग वीतराग भगवानकी स्तुति भक्तिभावसे पढ़ा करते हैं, उनके सब विघ्न नष्ट होते हैं, उनका मानसिक अंधकार अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है और वे अपनी मनचाही वस्तुको प्राप्त करते हैं। अर्थात् धर्मके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है।

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि॥ २०॥

हिन्दी–पद्यानुवाद।

जो ज्ञान निर्मल विभो! तुझमें सुहाता,
भाता नहीं वह कभी परदेवतामें।
होती मनोहर छटा मणिमध्य जो है,
सो काँचमें नहिं; पड़े रवि-बिम्बके भी॥

नाथ! लोक और अलोकमें स्थान करके जो ज्ञान आपमें शोभाको प्राप्त होता है वह हरि, हर, ब्रह्मा आदि देवोंमें कभी नहीं शोभता। जो तेज एक महामणिको प्राप्त होकर महत्त्व प्राप्त करता है, वह महत्त्व बहुत किरणोंवाले काँचके टुकड़ेमें उसे प्राप्त नहीं हो सकता।

नामराजकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधना द्वारा जिसने फल पाया, उसकी कथा लिखी जाती है–

नागपुरी नामकी एक सुन्दर पुरी है। उसके राजाका नाम नामराज है। वे बड़े बलवान और बुद्धिमान हैं। उन्होंने सब शत्रुओंको पराजित करके अपने राज्यको निष्कण्टक बना लिया है। उनकी महारानीका नाम विशाला है। वे बड़ी सती, पतिव्रता, शीलसौभाग्य आदि श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं और बहुत सुन्दरी हैं। देव-कन्याएँ भी उनका रूप देख कर लज्जित हो जाती हैं। रानी इस समय गर्भ-भारसे दुखी है। सच है प्रसवसे कौन महिला दुःख नहीं उठाती।

महाराजने रानीको गर्भवती देख कर ज्योतिषियोंको बुला कर पूछा–आप लोग बतलाइए कि, महारानीके पुत्र होगा या पुत्री? बेचारे ज्योतिषी नाम–मात्रके ज्योतिषी थे। वे ऐसे बड़े पंडित नहीं थे जो राजाके पूछे प्रश्नका ठीक ठीक उत्तर दे सकते। इस कारण वे सबके सब चुप हो रहे। उनसे कुछ उत्तर देते नहीं बना। जिनका जिस विषयमें ज्ञान ही थोड़ा होता है वे उस विषयका पूरा उत्तर दे

भी नहीं सकते। यही कारण था कि वे राजाके प्रश्नका भावी फल नहीं बता सके।

उस समय विद्यानन्दी नामके एक महामुनि नागपुरीमें विद्यमान थे। वे सब विषयोंके बहुत अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने राजाके प्रश्नकी चर्चा सुन कर भक्तामर-स्तोत्रकी भक्तिपूर्वक आराधना की और उसके प्रभावसे प्रत्यक्ष हुई देवी द्वारा सब बातें जान लीं।

इसके बाद वे एक दिन राजसभामें जाकर सब लोगोंके सामने राजासे बोले—राजन्! तुम्हारे प्रश्नका उत्तर ज्योतिषी लोग तो दे नहीं सके, पर मैं देना चाहता हूँ। सुनिए, आजसे ठीक बारहवें दिन सबेरे ही महारानीके पुत्र उत्पन्न होगा। उसके नेत्र तीन होंगे। वह बड़ा बलवान होगा; परन्तु इसके साथ ही आपका प्रधान हाथी मर जायगा। इतना कह कर मुनि चुप हो गए।

मुनिकी भविष्यद्वाणी सुन कर ब्राह्मण लोग उनकी दिल्लगी उड़ाने लगे। वे बोले—देखो इस क्षपणककी धृष्टता, जो पीठ पीछेकी बात को तो जान नहीं सकता और चला भविष्य कहने! मुनि इसका कुछ उत्तर न देकर चल दिए। यह देख ब्राह्मणोंको भी चुप रह जाना पड़ा।

आखिर बारहवें दिन प्रातःकाल ही रानीने पुत्र-रत्न प्रसव किया। उसके तीन नेत्र थे। वह बहुत तेजस्वी भी था। इसके साथ ही उधर राजाके प्रधान गजराजकी भी मृत्यु हो गई। मतलब यह कि मुनिराजने जो जो बातें बतलाई थीं, वे सब अक्षरशः सत्य हो गईं। सच है पूर्णज्ञानीका कहा कभी मिथ्या नहीं होता।

यह देख राजाने मुनिराजकी बहुत प्रशंसा कर कहा—ऐसे साधुओंको धन्य है, ये ही सर्व-श्रेष्ठ साधु हैं और इन्हींमें पूर्णज्ञानका साम्राज्य अधिष्ठित है।

जैनधर्मके ऐसे अश्रुत-पूर्व प्रभावको देख कर वे मुनिकी दिल्लगी उड़ानेवाले ब्राह्मण और उनके अतिरिक्त बहुतसे अन्यधर्मी जन भी जैनी हो गए। राजाने भी जैनधर्म ग्रहण कर लिया। मुनिराजके उद्योगसे धर्मकी बड़ी प्रभावना हुई।

यह जान कर अन्य पुरुषोंको भी इस पवित्र स्तोत्रकी सदा आराधना करते रहना चाहिए।

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि ॥ २१॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

देखे भले, अयि विभो ! परदेवता ही,
देखे जिन्हें हृदय आ तुझमें रमे ये ।
तेरे विलोकन किये फल क्या प्रभो, जो
कोई रमे न मनमें परजन्ममें भी ॥

हे प्रभो ! हरि, हर, ब्रह्मा आदि देवोंका देखना कहीं आपसे अच्छा है; क्योंकि उन्हें देख कर ही हृदय आपमें संतोष पाता है। इसका कारण यह है कि वे राग-द्वेष-सहित हैं और आप वीतराग-राग-द्वेष-रहित हैं। नाथ ! आपके देखनेसे लाभ ही क्या जो संसारमें जन्म-जन्मान्तरमें भी कोई देवी-देवता मेरे मनको हर नहीं सकते।

जीवनन्दी मुनिकी कथा ।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनाके फलसे मन दूसरी ओर न जाकर स्थिर रहता है। इसकी कथा इस प्रकार है—

गुजरात देशमें देवपुर नामका एक सुन्दरपुर था। एक दिन विहार करते हुए जीवनन्दी नामके मुनि अपने संघके साथ इधर आ निकले। वे पास ही एक उपवनमें ठहरे। उन्हें जान पड़ा कि इस गाँवमें श्रावक लोग नहीं हैं। तब उन्होंने किसी एक मनुष्यसे पूछा कि इस शहरमें श्रावक लोग नहीं हैं क्या? उसने कहा कि पहले तो यहाँ बहुतसे श्रावक लोग रहते थे; परन्तु बहुत दिनोंसे इधर उनके गुरुओंका आना-जाना बन्द हो जानेके कारण दूसरे धर्मवालोंके उपदेशसे वे लोग शैव हो गए हैं।

यह सुन कर मुनि अपने संघको लिए हुए वहाँके एक शिवमन्दिरमें जाकर ठहर गए। जो धर्मकी प्रभावनाके चाहनेवाले होते हैं, वे उचित या अनुचित स्थानका विचार नहीं करते। उन्हें अपने कामसे मतलब रहता है। ऐसे लोग अपने पवित्र धर्मका नाश नहीं सह सकते। और थोड़े बहुत सावद्यके बिना धर्मकी प्रभावना भी नहीं होती। जैनमुनियोंको शिवमन्दिरमें आये हुए देख कर शैव लोग बहुत प्रसन्न हुए। सच है—एक दूसरे धर्मके माननेवालेको अपनेमें शामिल होते हुए देखकर किसे प्रसन्नता नहीं होती? वे लोग परस्परमें कहने लगे कि, देखो, शिवजीका कितना प्रभाव है, जो जैन-साधु भी शिवमन्दिरमें आ गये। उन्हें देखनेके लिए बहुतसे लोग एकत्रित हो गये। उन्हें देख कर मुनिराज बोले—भाइयो! संसारमें जितने धर्म हैं उन सबमें जिनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसके द्वारा स्वर्ग-मोक्षकी प्राप्ति होती है। जैनधर्ममें जैसा दया पालन करना बतलाया गया है वैसा किसी धर्ममें नहीं बतलाया गया है। सब धर्मोंकी भींत कुछ न कुछ स्वाथको लिए हुए खड़ी की गई है; पर एक जैनधर्म ही ऐसा धर्म है जिसमें स्वार्थका नाम भी नहीं। और सब देवोंमें जिनदेव ही सर्वोत्कृष्ट देव

हैं, जो वास्तविक देवपनेके सर्वथा योग्य हैं। संसारके और और देवोंमें कोई तो रागी है, कोई द्वेषी है, किसीके हाथोंमें शस्त्र है, कोई भयंकर है जिसे देखकर भय लगता है; और कोई क्रूर हैं जो सदा जीवोंकी बलि लिया करते हैं। पर जिनदेवमें ऐसी एक भी बात नहीं है। वे परम वीतराग और शांत हैं। संसारी जीव सदा आकुलतामें फँसे रहते हैं, इसलिए उन्हें ऐसे देवोंके पूजनेकी आवश्यकता है जो उन्हें आकुलतासे छुटा कर शान्ति देनेवाले हों। पर संसारी जीवोंकी आकुलता अन्य देवतागण दूर नहीं कर सकते; क्योंकि वे स्वयं ही आकुल हैं। जो स्वयं भूखों मरता है वह दूसरोंकी भूख कैसे दूर कर सकता है? इन बातोंको देख कर कहना पड़ता है कि आकुलता मिटाकर उन्हें शान्ति प्रदान करनेवाले परम वीतराग और शान्त जिन-देव ही हैं; और वे ही देवोंके देव हैं। इसके सिवाय ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी उन्हें भक्तिसे सदा पूजते हैं। इसलिए तुम्हें जिनधर्म स्वीकार करके जिनदेवके सेवक बनना चाहिए। इसीमें तुम्हारा कल्याण है।

मुनिका उपदेश सुनकर वे लोग बोले—महाराज! यह बात तो आपने बड़े आश्चर्यकी कही कि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि बड़े बड़े पुरुष भी जिनदेवको प्रणाम करते हैं। हमें इस पर विश्वास नहीं होता। यदि आप इस बातको सत्य करके दिखला देंगे तो हम सब लोग भी फिर जिनदेवको ही मानने लगेंगे। हमें फिर आप जैनी ही समझिए।

तब मुनिराजने भक्तामरके मंत्रोंकी साधनाके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, सूर्य, कार्तिकेय आदि देवताओंको शिवमन्दिरमें बुलवाये और फिर उन्हें साथ लेकर वे जिनमन्दिर पहुँचे। उस समय उन सब देवोंने जिन भगवानकी पूजा की। यह देख कर उन लोगोंको बड़ा अचंभा हुआ।

उन्होंने फिर शिवधर्मकी मिथ्या वासनाको छोड़ कर जैनधर्म ग्रहण कर लिया। जैनधर्मकी बहुत ही प्रभावना हुई।

इसके बाद ब्रह्मा आदि देवगण अपने अपने स्थान पर चले गए। इधर मुनिराज भी वहाँसे विहार कर गए। कारण धर्मोपदेश द्वारा जीवोंका हित करनेवाले साधु-महात्मा कभी एक स्थान पर स्थिर होकर नहीं रहते। गुरुओंकी पवित्र संगतिसे पापी प्राणी भी धर्म ग्रहण करनेका पात्र हो जाता है। इसलिए भव्य पुरुषोंको सदा गुरु-संगति करनी चाहिए।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम्॥ २२॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

माएँ अनेक जनतीं जगमें सुतोंको
हैं; किन्तु वे न तुझसे सुतकी प्रसूता।
सारी दिशा धर रहीं रविका उजेला;
पै एक पूरब दिशा रविको उगाती॥

नाथ! हजारों ही स्त्रियाँ पुत्रोंको जनती हैं; परन्तु आपके समान पुत्रको दूसरी माता न जन सकी। नक्षत्रोंको तो सब ही दिशाएँ धारण करती हैं; परन्तु देदीप्यमान् किरणोंवाले सूर्यको एक पूर्व दिशा ही जन्म देती है।

मतिसागर मुनिकी कथा।

उक्त श्लोकके मंत्रकी आराधनाके प्रभावसे बड़े बड़े अभिमानी विद्वान् क्षण मात्रमें पराजित कर दिए जाते हैं। उसकी कथा इस प्रकार है—

एक गौड़शास्त्र नामक शहर था। वह सुन्दरतामें पृथ्वीके तिलक समान था। उसके राजाका नाम प्रजापति था। वे बुद्धिमान और राजनीतिके अच्छे जानकार थे। वे बुद्धधर्मको मानते थे।

एक दिन राजसभामें एक बुद्ध-साधु और दूसरे जैन-मुनि परस्पर शास्त्रार्थ करनेके लिए आए। उनमेंसे जैन-साधुका नाम मतिसागर था और बुद्ध-साधुका प्रज्ञाकर। उनमेंसे पहले बुद्ध-साधुने खड़े होकर कहा—सब वस्तुएँ क्षणिक हैं; क्योंकि वे सत्‌रूप हैं, अर्थात् विद्यमानरूप हैं। जो सत् होता है वह नियमसे क्षणिक होता हैं। जैसे घट, पट आदि वस्तुएँ। बात यह है कि अवयव सब भिन्न भिन्न हैं; परंतु वे जब परस्परमें मिलते हैं तब अवयवीकी कल्पना की जाती है, अर्थात् उनमें एकत्व-बुद्धि होती है। वास्तवमें कोई एक अवयवी नहीं है। जैसे चवँरके बाल सब जुदे जुदे हैं, पर मिलनेसे वे एकत्वकी बुद्धि उत्पन्न कर देते हैं।

इसके उत्तरमें जैनसाधुने कहा—यदि सब वस्तुएँ क्षणिक ही हैं तो जिस देवदत्तको मैंने पहले देखा था 'यह वही देवदत्त है' इस प्रकारका जो एक ज्ञान होता है वह नहीं होना चाहिए; पर होता जरूर है। क्योंकि तुम्हारे क्षणिक सिद्धान्तके अनुसार तो पहले देखी हुई वस्तु नष्ट हो जानी चाहिए। इसके सिवा संसारमें जो लेन-देन व्यवहार होता है, वह फिर कुछ भी न होना चाहिए। क्योंकि जिसके साथ लेन-देन किया जाता है, वह तो नष्ट हो जाता है।

कदाचित् कहो कि, "तुम्हारा यह कहना ठीक नहीं है। क्योंकि जैसे नख काट भी दिये जाते हैं, पर उनकी संतति बनी रहनेके कारण वे फिर निकल आते हैं। उसी प्रकार पहले देखी हुई वस्तुका जो ज्ञान होता है अथवा लेन—देनकी जो स्मृति

बनी रहती है वह पूर्वके संस्कारसे होती रहती है। उससे वस्तुका स्थिरपना सिद्ध नहीं हो सकता।" यह कहना भी भ्रम भरा हुआ है। देखो, नख जब सर्वथा निकाल दिया जाता है तब वह नहीं निकलता। ज्ञानमें यह बात नहीं है। उसकी सन्तति, बीच बीचमें जो अनेक तरहका ज्ञान हुआ करता है उससे बिल्कुल टूट जाती है, पर तब भी प्रत्यभिज्ञान वा स्मरणज्ञान हुआ ही करता है। इसलिए वस्तुको सर्वथा क्षणिक न मान कर कथंचित् स्थिर भी मानना चाहिए। अर्थात् वस्तु द्रव्यकी अपेक्षासे नित्य है और उसकी जो क्षण-क्षणमें अवस्था बदलती रहती है उससे वह क्षणिक भी है। मतलब यह कि वस्तु नित्यानित्य-स्वरूप है।

अब रही यह बात कि अवयवी कोई नहीं है, सो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि धारण, आकर्षण आदि अवयवके बिना नहीं होते। जैसे केवल बालोंसे न गरमी मिटती है और न ठंडी हवा मिलती है। इसलिए मानना पड़ेगा कि कोई अवयवी अवश्य है। इत्यादि दोषोंके द्वारा बुद्ध-भिक्षुकके सिद्धान्तका जैनमुनिने अच्छी तरह खण्डन कर दिया। सच है— प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यके सामने बेचारा जुगनु कहाँ तक ठहर सकता है। इस मानभंगसे वह बुद्ध-भिक्षुक बहुत दुखी हुआ। दुखी होकर उसने निदान किया कि इस अपमानका बदला कभी न कभी मैं अवश्य लूँगा। सच है—मृत्युसे भी मानभंगका दुःख कहीं अधिक होता है। क्योंकि मृत्युका दुःख तो एक ही समयके लिए होता है, पर मानभंगका दुःख प्रतिदिन कष्ट दिया करता है।

इसी आर्त्तध्यानसे मर कर वह यक्ष हुआ। कारण खोटे भावोंसे मरे हुए साधु, तपस्वी प्रायः कुदेव ही होते हैं। उसने कु-अविधज्ञानसे अपने यक्ष होनेका कारण जान कर गौड़शास्त्रके धर्मात्मा जनपर उपद्रव

करना शुरू किया। जिधर देखो उधर ही कोई दाहज्वरके मारे चिल्ला रहा है, कोई शूल रोगसे त्राहि त्राहि कर रहा है, कहीं हैजा है, कहीं विषूचिका है, और कहीं चेचकका भयंकर रोग है। सब श्रावक-गण विपत्तिमें पड़ गये। उससे मुक्त होनेका वे कोई उपाय नहीं कर सके।

यह देख वे मुनि यक्ष-मन्दिरमें गए और अपने कमण्डलुको यक्षके कानमें लटका कर उसके सामने पाँव फैला करके सो रहे। यक्षने अपने अविनय करनेवाले मुनिको बहुत डराया, धमकियाँ दीं; पर वे उसकी कुछ परवा न कर सोते ही रहे। सियालसे हाथी नहीं डरा करते हैं। यह देख यक्षने ये सब बातें राजाको सूचित कीं। राजाने मुनि पर गुस्सा होकर कहा कि—जिस देवकी मैं पूजा-भक्ति करता हूँ, उसे अपमानित करनेकी किसमें हिम्मत है? इसके बाद उसने अपने नौकरोंको आज्ञा की कि जाओ, उस अविनयी पापी मुनिको अभी मार डालो। राजाकी आज्ञा पाकर हजारों नौकर हाथोंमें बड़ी बड़ी लाठियाँ लिए यक्षमन्दिर पहुँचे और निर्दयतासे मुनिको मारने पीटने लगे। पर आश्चर्य है कि वह मार मुनि पर न पड़ कर राजाकी रानी पर पड़ी।

इस घटनासे राजा बड़ा चकित हुआ। वह फिर अपने परिवारके साथ यक्ष—मन्दिर आया और मुनिके पावोंमें पड़ कर उनसे उसने क्षमा कर देनेके लिए प्रार्थना की। इतनेमें यक्षने भी प्रगट होकर मुनिराजको नमस्कार कर क्षमा माँगी। जिनकी जिनधर्म पर श्रद्धा है उनके पावोंमें देवता लोग अपना सिर झुकाया ही करते हैं। धर्मका इस प्रकार अचिन्त्य माहात्म्य देखकर राजा तथा और भी बहुतसे लोगोंने बुद्ध मतको छोड़ कर जिनधर्म ग्रहण किया। जैनधर्मकी खूब प्रभावना हुई। एकका आविर्भाव अर्थात् उत्पन्न होना और एकका तिरोभाव अर्थात् नष्ट होना वस्तुके ये निरंकुश दो धर्म ही हैं।

भक्तामर–स्तोत्रकी आराधनासे मतिसागर मुनिने जो धर्मकी प्रभावना की उसे देख कर भव्यजनोंको भी इस पवित्र स्तवनकी आराधनामें मन लगाना चाहिए। कारण 'धर्मो भवति कामदः' अर्थात् धर्म मनचाही वस्तुका देनेवाला है।

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः॥२३॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

योगी तुझे परम पूरुष हैं बताते,
आदित्यवर्ण मलहीन तमिस्रहारी।
पाके तुझे, जय करें सब मौतको भी,
है और ईश्वर नहीं वर मोक्ष-मार्ग॥

नाथ! तपस्वी जन आपको परम पुरुष कहते हैं, और अन्धकारसे परे होनेके कारण अथवा अन्धकार अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मोंके नष्ट हो जाने पर केवलज्ञान अवस्थामें भामण्डलसे देदीप्यमान होनेके कारण सूर्यके समान तेजस्वी कहते हैं; आपहीको अमल—राग-द्वेषादि कर्म-मल-रहित होनेसे निर्मल कहते हैं; और मन, वचन, कायकी शुद्धिसे आपकी आराधना कर वे मृत्यु पर विजय लाभ करते हैं। नाथ! सच तो यह है कि आपको छोड़ कर मोक्षका और कोई श्रेष्ठ मार्ग ही नहीं है।

आर्यनन्दी मुनिकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी जो पवित्र भावोंसे आराधना करते हैं, उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती। इसकी कथा इस प्रकार है—

भारतवर्षके प्रसिद्ध अवन्ति प्रान्तमें उज्जयिनी एक बहुत सुन्दर नगरी है। उसमें बड़े बड़े धनी रहते हैं। उनके पास ऐसे ऐसे अमोल रत्न हैं कि जिनकी सानीके रत्नोंका मिलना संसारमें दुर्लभ है। उसमें सेठ-साहूकारोंके बड़े बड़े ऊँचे और सुन्दर महल हैं। उन पर बहु-मूल्य वस्त्रोंकी ध्वजाएँ शोभा दे रही हैं।

उज्जयिनीके बाहर वनमें एक चण्डिका देवीका मन्दिर है। उसमें जीवोंकी बलि बहुत दी जाया करती है। इस कारण वह कहीं खून, कहीं मांसके ढेरों, कहीं हड्डियों, और कहीं मरे हुए पशुओंसे सदा व्याप्त रहता है। उसे देखते ही चित्त घबरा उठता है, उल्टी होने लगती है।

एक दिन शुद्ध चारित्रके धारक आर्यनन्दी मुनि विहार करते हुए उधर आ गए। संध्या हो जानेके कारण वे उस मन्दिरमें एक ओर ध्यान करनेको बैठ गए। उन्हें अपने मन्दिरमें ध्यान करते हुए देख-कर देवीने क्रोधसे उत्तेजित होकर मुनिको सैकड़ों दुर्वाक्य कहे और उन पर वह घोरसे घोर उपसर्ग करने लगी। इसके बाद उसने सिंह, व्याघ्र, सर्प, आदि भयंकर जीवोंकी सृष्टि कर मुनिको खूब डराया। उनपर वह तलवार चलानेको उद्यत हुई। वज्र गिराना उसने शुरू किया, घनघोर काले मेघोंकी घटाएँ दिखलाईं, और प्रचण्ड वायु बहाया। अपनी शक्तिभर उपद्रव करनेमें उसने कोई कसर नहीं की; परंतु तब भी वह मुनिराजको विचलित न कर सकी। कारण वे भक्तामरकी आराधना कर रहे थे, इसलिए जिनधर्म-भक्त देवीने आकर उपद्रवोंसे उनकी रक्षा करली। चण्डिका हार खाकर स्वयं मुनिराजके पाँवोंमें पड़ी और अपराधकी क्षमा करा कर बोली—भगवन्! आज्ञा कीजिए, मैं पालनेके लिए तैयार हूँ।

मुनिने कहा—"जैसा तुमने कहा वैसा यदि कर सकती हो तो आजसे तुम जीवोंकी हिंसा करना और कराना छोड़ कर दयाको स्वीकार करो और इसके साथ पवित्र सम्यक्त्वको ग्रहण करो।"

इसके बाद देवी मुनिकी आज्ञासे जीवहिंसाका परित्याग कर चली गई। इस प्रकार मंत्र-प्रभावसे देवतोंको भी आज्ञाकारी बनते देख-कर बहुतोंने सम्यक्त्व-पूर्वक जैनधर्म ग्रहण किया, बहुतोंने अपने चिर-संचित मिथ्यात्वका परित्याग किया। धर्मकी खूब प्रभावना हुई।

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः॥ २४॥
बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा-
त्त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्।
धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्-
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि॥ २५॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

योगीश, अव्यय, अचिन्त्य, अनङ्गकेतु,
ब्रह्मा, असंख्य, परमेश्वर, एक, नाना,
ज्ञानस्वरूप, विभु, निर्मल, योगवेत्ता,
त्यों आद्य, सन्त तुझको कहते अनन्त॥
तू बुद्ध है विबुध-पूजित-बुद्धिवाला,
कल्याण-कर्तृवर शंकर भी तुही है।
तू मोक्ष-मार्ग-विधि-कारक है विधाता,
है व्यक्त नाथ! पुरुषोत्तम भी तुही है॥

प्रभो! आपके अनन्तज्ञानादि स्वरूप आत्माका कभी नाश नहीं होता, इसलिए योगीजन आपको 'अव्यय' कहते हैं। आपका ज्ञान तीनों लोकोंमें व्याप्त है, इसलिए आपको 'विभु' व्यापक या समर्थ कहते हैं। आपके स्वरूपका कोई चिन्तवन नहीं कर पाता, इसलिए आपको 'अचिन्त्य' कहते हैं। आपके गुणोंकी संख्या नहीं, इसलिए आपको 'असंख्य' कहते हैं। आप कर्मोंका नाश कर सिद्ध हुए हैं; किन्तु अनादि मुक्त नहीं हैं, इसलिए आपको 'आद्य' कहते हैं। अथवा युगकी आदिमें आपने कर्मभूमिकी रचना की है या चौबीस तीर्थंकरोंमें आप आद्य तीर्थंकर हैं, इसलिए भी आपको 'आद्य' कहते हैं। सब कर्मोंसे आप रहित हैं अथवा अनन्त आनन्दमय हैं, इसलिए आपको 'ब्रह्मा' कहते हैं। आप कृतकृत्य हैं, इसलिए आपको 'ईश्वर' कहते हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शनादिसे आप युक्त हैं अथवा अविनश्वर हैं, इसलिए आपको 'अनन्त' कहते हैं। संसारके क्षयके कारण कामके आप नाश करनेवाले हैं, इसलिए आपको 'अनंगकेतु' कहते हैं। योगी अर्थात् सामान्य-केवली या मन, वचन, कायके व्यापारको जीतनेवाले जो मुनिजन हैं उनके आप स्वामी हैं, इसलिए आपको 'योगीश्वर' कहते हैं। ज्ञान-दर्शन-चारित्र-रूप योगके जाननेवाले हैं या तपस्वी-जन आपके द्वारा यम आदिक आठ प्रकारका योग-ध्यानाग्नि जान पाते हैं अथवा आपने विशेष करके जीवके साथ सम्बन्ध करनेवाले कर्मोंका नाश कर दिया है, इसलिए आपको 'विदितयोग' कहते हैं। आप पर्यायोंकी या अनन्त गुणोंकी अपेक्षासे अनेक हैं, इसलिए आपको 'अनेक' कहते हैं। द्रव्यकी अपेक्षासे या अनन्तज्ञानादि स्वरूपसे अथवा संसारमें आप अद्वितीय हैं—आपसे बढ़कर कोई नहीं हैं, इसलिए आपको 'एक' कहते हैं। आप केवलज्ञान-स्वरूप हैं अर्थात् सब कर्मोंका क्षय करके चित्स्वरूप हुए है, इसलिए आपको 'ज्ञानस्वरूप' कहते हैं। और सर्व कर्म-मल-रहित हैं, इसलिए आपको 'अमल' कहते हैं।

प्रभो! आपके केवलज्ञानकी गणधरोंने या स्वर्गके देवोंने पूजा की है, इसलिए आप ही सच्चे 'बुद्ध' हैं। किन्तु जो क्षणिकवादी हैं—संसारके सब पदार्थोंको जो क्षणिक बतलाता है अथवा जिसमें केवलज्ञान न होनेसे जो वस्तुके स्वरूपको ठीक ठीक नहीं जानता, वह कभी बुद्ध नहीं हो सकता। आप तीनों लोकोंको सुखके देनेवाले हैं, इसलिए आप ही सच्चे 'शंकर' हैं। जो कपाल हाथमें लिये स्मशानमें नाचता है, संसारका संहारक है और मोहका

मारा हुआ पार्वतीको साथ रखता है वह 'शंकर' संसारको सुखकारी नहीं हो सकता। धीर! आप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक्चारित्ररूप सत्यार्थ मोक्ष-मार्गका उपदेश करते हैं, इसलिए आप ही सच्चे ब्रह्मा हैं। किन्तु जिसने वेदों द्वारा जीवोंकी हिंसाका उपदेश करके नरकका विधान किया, जो रंभा नामकी अप्सरा पर आसक्त हो गया वह 'धाता' अर्थात् ब्रह्मा नहीं कहा जा सकता; क्योंकि वह मोक्ष-मार्गका उपदेशक नहीं है। और नाथ! आप ही साक्षात् 'पुरुषोत्तम' अर्थात् पुरुष-श्रेष्ठ श्रीकृष्ण हो। किन्तु लोग जिसे पुरुषोत्तम अर्थात् कृष्ण कहते हैं, वह सच्चा कृष्ण नहीं है, कारण वह गोपियोंके साथ क्रीड़ा करनेवाला एक ग्वाल है।

जितशत्रुकी कथा।

जो लोग इन श्लोकोंके मंत्रोंकी पवित्र भावोंसे आराधना करते हैं, उन्हें व्यन्तर आदि देवोंकी बाधा नहीं होती। इसकी कथा इस प्रकार है.—

सूरीपुर नामका एक बहुत सुन्दर शहर है। उसकी शोभा स्वर्गसे भी बढ़कर है। उसमें बड़े ऊँचे ऊँचे महल हैं। उनके शिखरों पर लगे हुए सोनेके कलश बड़ी शोभा देते हैं। उन्हें देख कर चित्तमें यह कल्पना उठती है—मानो एक साथ हजारों सूर्य उदयाचल पर उदित हुए हैं। सूरीपुर न केवल धनी लोगोंसे ही युक्त है; किन्तु उसमें बड़े बड़े विद्वान् लोग भी निवास करते हैं। उनकी प्रतिभाके सामने बृहस्पतिको भी नीचा देखना पड़ता है।

सूरीपुरके राजाका नाम जितशत्रु है। वह बड़ा नीतिज्ञ, पराक्रमी, और तेजस्वी है। शत्रुगण उससे डर कर जंगलोंमें मारे मारे फिरते हैं; मूर्ख लोग अपनेको भूषणोंसे सजाते हैं, पर जितशत्रुने अपनेको गुणरूपी भूषणोंसे सजाया था। इस कारण वह बड़ा शोभता था। वह ऐश्वर्य, सेना, दुर्ग आदि राज्यके सात अंगोंसे युक्त था। संसारमें उसके नामकी बड़ी धाक पड़ती थी।

वसन्त आया। वनमें फूल फूलने लगे। उनकी दिल लुभानेवाली सुगन्ध अपना साम्राज्य विस्तृत करने लगी। चारों ओरसे मत्त भौंरोंके झुण्डके झुण्ड आ-आ कर अपने राजाधिराज वसन्तको बधाइयाँ देने लगे। कोकिलाओंने वारांगनाओंका वेष लिया। सार यह कि जिधर आँख उठा कर देखो उधर ही सिवा राग—रंगके कुछ नहीं दिखाई पड़ता था।

ऐसे अपूर्व राग—रंगके समय जितशत्रु उससे कैसे वंचित रह सकते थे। अतएव वे भी अपनी सब रानियोंको लेकर वसन्तकी बहार लूटनेके लिए अपने स्वर्ग-सदृश सुन्दर उपवनमें गए। वहाँ वे रानियोंके साथ बड़े आनन्दके साथ क्रीड़ा—विलासका सुख भोग रहे थे कि, इतनेमें एक पापी व्यन्तरने उनके सब आनन्दको—सब सुखको किरकिरा कर दिया। एक साथ सब रानियोंके शरीरमें प्रवेश कर वह उन्हें बेहद कष्ट पहुँचाने लगा। यह देख कर राजा बड़े दुखी हुए। उन्होंने उसी समय बड़े बड़े मांत्रिकों और तांत्रिकोंको बुलाया। बहुत कुछ प्रयत्न किया गया, पर किसीसे रानियोंको आराम न पहुँचा। देव-दोष बहुत ही कठिनतासे दूर होता है।

यह सब हो ही रहा था कि एक मनुष्यने कहा—महाराज! शान्तिकीर्ति मुनि इस विषयके अच्छे जाननेवाले हैं। आप उन्हें बुलवा कर महारानियोंको दिखलाइए। असंभव नहीं कि उनके द्वारा बहुत शीघ्र ये सब उपद्रव मिट जायँ। यह सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसी समय अपने प्रतिष्ठित राजकर्मचारियोंको भेज कर जिनमन्दिरसे उन्हें बुलवाया।

मुनिराज आए। राजाने उन्हें सब हाल कह सुनाया। मुनिराजने यह कह कर कि, कोई चिन्ताकी बात नहीं, एक जलका लोटा मँग-

वाया और उसके जलको मंत्र कर रानियोंकी आँखों पर छींटा। उनका जल छींटना था कि वह व्यन्तर चीख मार कर उसी समय भाग गया। जो प्रचण्ड मोह-शत्रुको भी नष्ट कर देते हैं, उनके रहते बेचारे व्यन्तरकी क्या हिम्मत जो वह उनके सामने ठहर सके। जो अग्नि बड़े बड़े पर्वतोंको देखते देखते जला कर खाक कर डालती है उसके सामने घास-फूँसकी कौन गिनती है?

मुनिराजका यह प्रभाव देख राजाने उनका बहुत उपकार मान कर कहा—भगवन्! आप धन्य हैं, आप ही सच्चे और सर्वोत्तम साधु हैं, आपका ज्ञान, आपका पाण्डित्य अपूर्व है; और वह धर्म भी संसारके सब धर्मोंमें अपूर्व है जिसे आप धारण किये हुए हैं।

इसके बाद राजाने मुनिसे पवित्र जिनधर्मकी दीक्षाके लिए प्रार्थना कर जैनधर्म स्वीकार कर लिया। सच है—बिना महत्त्वकी बातोंको देखे कोई धर्मका ग्राहक नहीं होता। एक प्रतापी राजाको जिनधर्म धारण करते देख-कर और भी बहुतसे लोगोंने उसे स्वीकार किया। धर्मकी खूब प्रभावना हुई।

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिनभवोदधिशोषणाय॥ २६॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

त्रैलोक्य-आर्ति-हर नाथ! तुझे नमूँ मैं,
हे भूमिके विमलरत्न! तुझे नमूँ मैं।

हे ईश ! सर्व जगके तुझको नमूँ मैं,
मेरे भवोदधि विनाशि, तुझे नमूँ मैं ॥

नाथ ! आप त्रिभुवनके दुःखोंको नाश करनेवाले हैं, पृथ्वीके एक अत्यन्त सुन्दर भूषण हैं, तीनों लोकोंके ईश्वर हैं, संसाररूपी समुद्रके सुखानेवाले हैं-अर्थात् संसारका नाश कर भव्य जीवोंको मोक्ष प्राप्त करानेवाले हैं, इसलिए आपको नमस्कार है।

धनमित्र सेठकी कथा।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे धन-सम्पत्ति प्राप्त होती है। इसके प्रभावकी और धर्म पर विश्वास करानेवाली कथा इस प्रकार है:—

पटनामें एक धनमित्र नामका सेठ रहता था। पापके उदयसे दरिद्रता उसका पीछा न छोड़ती थी। एक दिन वह गुणसेन मुनिके पास गया और उन्हें प्रणाम कर उसने पूछा—स्वामी! कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे मैं इस दरिद्रता पिशाचिनीसे अपना पिण्ड छुड़ा सकूँ।

मुनिने उससे कहा—भाई! लक्ष्मीका होना न होना अपने पुण्य-पापके आधीन है। पर इतना जरूर है कि धर्म-सेवनसे पाप नाश होकर पुण्यका बंध होता है। वही पुण्य लक्ष्मीकी प्राप्तिका भी कारण है। इसलिए तुम भक्तामर—स्तोत्रकी सदा पवित्र भावोंसे आराधना और 'तुभ्यं नमस्त्रि' इस श्लोकके मंत्रका नित्य ही प्रातःकाल ऋषभनाथके चैत्यालयमें जाप किया करो। इसके साथ यह बात सदा याद रखना कि परस्त्रियोंको अपनी माता-बहिनके समान मानना। कभी चित्तमें विकार उत्पन्न न होने देना। नहीं तो सिवा हानिके और कुछ हाथ न लगेगा।

मुनिके उपदेशसे धनमित्रने वैसा ही करना शुरू किया। उसे मंत्रकी आराधना करते करते कोई छह महीना बीत गए। एक दिन धनमित्र अपने घरसे जिन-मंदिरको जा रहा था। रास्तेमें उसे एक बहुत

सुन्दर युवती, जो उर्वशीको भी लज्जित करती थी, मिली। वह धनमित्रसे बोली—

प्यारे! मैं तुम्हारी बहुत प्रशंसा सुना करती हूँ। आज भाग्यसे मुझे तुम्हारे दर्शन भी होगए। मेरा जीवन आज सफल हुआ। मैं जैसा सुनती थी, उससे भी कहीं बढ़कर मैंने तुम्हें पाया। प्यारे! अब तुम मुझे अपनी जीवन-संगिनी बना कर मेरा मनोरथ सफल करो; और मेरी बहुत कालकी साधको मिटाओ। इस प्रकार प्रतिदिन सबेरे उठ कर मंत्र-जाप, स्तवन-पाठ आदिके द्वारा अपनी आत्माको व्यर्थ कष्ट पहुँचानेसे कोई लाभ नहीं है। मेरे पास अटूट धन है। अपनी सैकड़ों पीढ़ियाँ उसे बैठी बैठी खाया करेंगी तब भी उसका छोर नहीं आनेका। उसे भोगिए और जीवन सफल कीजिए। बेचारे लोगोंको स्वार्थी साधुओंने खूब ही अपने मायाजालमें फँसा रक्खा है—ठग रक्खा है। वे उन्हें परलोक और पापका भय दिखा दिखा कर सब बातोंसे वंचित रखते हैं। सच तो यह है कि न पाप है और न पुण्य है, न परलोक है और न आत्मा है। इस शरीरको छोड़ कर कोई जुदा आत्मा नहीं है जिसके लिए सब सुख—सब आनन्द पर पानी फेर कर दुःख उठाया जाय! बेचारे लोगोंको इन भिखमंगोंने बहका रक्खा है। इस कारण वे पाप-पुण्यसे डर कर सदा दुःख ही दुःख उठाया करते हैं।

युवतीके ऐसे पाप-पूर्ण वचनोंको सुन कर बेचारा धनमित्र काँप उठा। उसने अपने दोनों कानोंको हाथोंसे मूँद कर कहा—पापिनी! ऐसे दुर्गतिमें लेजानेवाले वचन कहते तुझे लज्जा नहीं आती? तू नहीं जानती, कि मुझे परस्त्री-त्यागव्रत है और तू परस्त्री है। तुझे तो छूलेनेसे भी मुझे महापाप लगेगा। मुझे अच्छी तरह याद है कि बड़े बड़े राजे महा-राजे इसी परस्त्रीके पापसे नरक गएं हैं? रावण तो इसी पापके

कारण मारा ही गया । चल, हट यहाँसे ! मुझे तेरी चाह नहीं । तू जानती है कि मैं अपने गुरुके दिये व्रत पर कितना दृढ़ हूँ ! चाहे मेरे प्राण भी चले जायँ, पर मैं व्रतको कभी नहीं छोड़ूँगा । मैं समझता हूँ कि प्राणोंके नष्ट होनेका दुःख उसी क्षण होता है, पर व्रतभंगका दुःख भवभवमें भोगना पड़ता है । संसारमें अनेक भवोंको कष्टके साथ बिता कर बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुए शीलरूपी अमोल रत्नको सत्पुरुष तुच्छ धन-सम्पत्तिके साथ नहीं बेंच दिया करते हैं ।

दूसरे, तूने जो परलोक, पुण्य, पापको कोई चीज नहीं बतलाया, यह भी तेरा भ्रम है । जान पड़ता है तुझे अभी दुर्गतियोंमें खूब सड़ना है । इसी कारण ऐसी निडर होकर बक रही है । यदि परलोक, पुण्य, पाप कोई वस्तु न होती तो हम जो प्रतिदिन अपनी आँखोंसे एकका मरना, एकका उत्पन्न होना, एक धनी, एक निर्धन, एक सुखी, एक दुखी, एक रोगी, एक निरोगी आदि देखते हैं, यह सब क्या है ? इन बातोंके देखते हुए परलोक आदिका अभाव नहीं माना जा सकता; किन्तु सद्भाव ही स्वयं-सिद्ध है ।

युवतीने धनमित्रके उत्तरको सुन कर बहुत प्रसन्न होकर कहा— धनमित्र ! मैं एक अमराँगना हूँ । मैं तो केवल तेरी परीक्षाके लिए आई थी । मैंने तुझे तेरे संकल्पपर बहुत दृढ़ पाया । इससे मुझे बहुत प्रसन्नता हुई । जो तुझे चाहिए वह माँग, मैं देनेको तैयार हूँ । धनमित्रने लज्जित होते हुए कहा—देवी ! यदि मुझ पर तुम्हारी कृपा है, तो मुझे कुछ धन प्रदान कर मेरी दरिद्रता नष्ट कर दो; कारण संसारमें बहुतसे पदार्थोंके रहते हुए भी प्यासा तो जल ही माँगेगा । देवीने ‘ तथास्तु ’ कह कर कहा—अच्छा धनमित्र ! अपने कोठोंको आज तुम लकड़ियोंसे भर देना, वे सब सोनेके हो जायँगे । देवीके कहे माफिक

धनमित्रने बहुतसे कोठोंको लकड़ियोंसे भर दिए । प्रातःकाल जब उसने उन्हें देखा तब वे सब सोनेसे भरे मिले । धनमित्र यह देख कर बहुत आनन्दित हुआ । सच है, पुण्यवानोंके लिए धनका लाभ कुछ कठिन नहीं ।

अब धनके प्रभावसे धनमित्र राजमान्य हो गया । लोग उसे कुबेर कहने लगे । वह सबमें प्रतिष्ठित गिना जाने लगा । जिस पर लक्ष्मीकी कृपा होती है उसे संसार-मान्य होनेमें कुछ देर नहीं लगती ।

धनमित्रने धन पाकर उसका उपयोग भी अच्छे कामोंमें किया । उसने बड़े बड़े विशाल जिनमन्दिर बनवाए, उनकी प्रतिष्ठा करवाई, विद्यालय खोले, अपने गरीब भाइयोंकी आशाएँ पूरी की, खूब दान दिया और साथ ही अपना नाम अमर किया ।

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश ।
दोषैरुपात्तविविधाश्रयजातगर्वैः
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥ २७ ॥

हिन्दी—पद्यानुवाद ।

आश्चर्य क्या गुण सभी तुझमें समाए,
अन्यत्र क्योंकि न मिली उनको जगा ही ।
देखा न नाथ ! मुख भी तव स्वप्नमें भी,
पा आसरा जगत्का सब दोषने तो ॥

मुनीश ! यदि सम्पूर्ण गुणोंने आपका आश्रय लिया—आपमें ऐसा कोई स्थान सूना नहीं जहाँ गुणोंने अपना स्थान न किया हो तो इसमें आश्चर्य क्या ? क्योंकि नाना प्रकार आश्रय पाकर गर्वसे मस्त हुए दोषोंने तो आपको स्वप्नमें भी नहीं देख पाया ।

हरि राजाकी कथा ।

जो भव्य पवित्र भावोंसे इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करते हैं, उन्हें मनचाही वस्तुएँ प्राप्त होती हैं । इसकी कथा इस प्रकार हैः—

महासिंधु गोदावरीके किनारे पर बानापुर नामका एक बहुत सुन्दर नगर है । वह अपनी बढ़ी हुई सम्पत्तिसे स्वर्गको भी नीचा दिखाता है । उसके राजाका नाम हरि है । वे रूप-गुण-वैभवमें इन्द्र-सदृश हैं। उन्हें सब सुख-सामग्री प्राप्त होने पर भी इस बातका अत्यन्त दुःख है कि उनके पुत्र नहीं है । पुत्रकी चिन्ताके दुःखने उनके सब सुखोंको किरकिरा कर दिया है ।

इस चिन्ताके मारे राजा सदा उदास और हताश रहने लगे । उनका किसी काममें चित्त नहीं लगता था । उन्हें इस तरह खेदित देख कर एक दिन राज-पुरोहितने उनसे प्रार्थना की कि राजराजेश्वर! आप एक साधारण बातके लिए इतने चिन्तित क्यों हैं ? मैं आपको एक उपाय बतलाता हूँ, उसे आप कीजिए । उससे आपका मनोरथ अवश्य पूरा होगा । वह उपाय यह है, कि आप प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके दर्भासन पर बैठ मन-वचन-कायकी पवित्रताके साथ शंकरकी आराधना किया करें । इस प्रकार कुछ दिनों तक करनेसे शंकर प्रसन्न होकर आपको मनचाहा वर प्रदान करेंगे । उससे आपको अवश्य पुत्र-लाभ होगा ।

पुरोहितके कहे अनुसार राजाने शंकरकी आराधना शुरू की और बहुत दिनों तक की भी; परन्तु उससे न तो शंकर प्रसन्न हुए और न पुत्र ही हुआ । कुदेवोंकी पूजासे ही यदि मनचाहा फल मिल जाया करे, तो फिर सुदेवोंको कौन पूछेगा ? और कौन उनकी पूजा-भक्ति

करेगा ? कुवैद्यों द्वारा ही यदि रोग नष्ट हो जाय, तो संसारमें फिर सुवैद्योंकी कुछ जरूरत न रहे। पर ऐसा नहीं होता।

संयोग-वश एक दिन राजाको मुनिचन्द्र नामक मुनिके दर्शन हो गए। राजाने उन्हें प्रणाम कर पूछा—महाराज! मेरे पुत्र नहीं होता, इसकी मुझे दिनरात चिन्ता रहती है। बतलाइए मुझे पुत्रका मुँह देखनेको मिलेगा या मेरे बाद मेरे कुलकी ही समाप्ति हो जायगी ?

मुनिने कहा—राजन्! अपने अपने कर्मोंका फल सभीको भोगना पड़ता है। वह तुम्हें भी भोगना पड़े तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि पापका फल बिना भोगे नहीं छूटता। पर हाँ, वह पाप, पुण्य और धर्मके द्वारा नष्ट हो सकता है। इसलिए तुम 'को विस्मयोत्र' इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करो। संभव है धर्मके प्रभावसे तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जाय। यह कह कर मुनिने राजाको मंत्र सिखा दिया। राजा मुनिकी कृपा लाभ कर बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद मुनिको प्रणाम कर वे अपने महल पर लौट आए।

राजाने मंत्रकी आराधना शुरू करदी। कुछ दिन बीतने पर एक दिन देवीने आकर राजाको एक स्वर्गीय फूलोंकी माला देकर कहा— इस मालाको अपनी रानीके गलेमें पहना कर उसके साथ सहवास करना। इसके प्रभावसे तुम्हें अवश्य पुत्र प्राप्ति होगी। यह कह कर देवी अन्तर्ध्यान हो गई।

कुछ समय बीतने पर रानीने पुत्र-रत्न प्रसव किया। यह देख राजाको बहुत आनन्द हुआ। सारे शहरमें खूब उत्सब मनाया गया। खूब दान दिया गया। दीन-दुखियोंकी आशाएँ पूरी की गईं। पुत्र-जन्म वैसे ही प्रसन्नताका कारण होता है, फिर सब तरह निराश हुएके यहाँ यदि पुत्र-जन्म हो, तब तो उसके आनन्दका पूछना ही क्या ?

भक्तामर-स्तोत्रका अचिंत्य प्रभाव है । उससे पुत्र-प्राप्ति होती है, स्वर्ग-प्राप्ति होती है और संसारमें ऐसी कोई बात नहीं रह जाती जो उसके प्रभावसे प्राप्त न हो सके । यह जान कर भव्य पुरुषोंको इसकी आराधना अवश्य करते रहना चाहिए । इस प्रकार मुनिके कहे अनुसार पुत्र-लाभ देख कर राजाकी मुनि पर खूब श्रद्धा हो गई । इसके बाद उनने जैनधर्म भी स्वीकार कर लिया । उनकी देखा-देखी और भी बहुतोंने पवित्र जैनधर्मकी शरण ली ।

उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्ततमोवितानं
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥ २८ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

नीचे अशोक तरुके तन है सुहाता,
तेरा विभो ! विमल रूप प्रकाशकर्ता;
फैली हुई किरणका, तमका विनाशी,
मानों समीप घनके रवि-बिम्ब ही है ॥

प्रभो ! जिसकी किरणें ऊपरकी ओर फैल रही हैं ऐसा आपका उज्ज्वल शरीर उन्नत अशोक वृक्षके नीचे बहुत ही सुन्दर जान पड़ता है; मानों जिसकी किरणें सब दिशाओंको आलोकित कर रही हैं ऐसा अन्धकारको नाश करनेवाला सूर्यबिम्ब मेघोंके आस-पास शोभ रहा हो ।

रूपकुंडलाकी कथा ।

इस काव्यके मंत्रकी आराधना करनेसे शोक नष्ट होता है और रोगादिकका नाश होकर शरीर सुन्दर हो जाता है । इसकी कथा नीचे लिखी जाती है ।

धारा नामकी एक प्रसिद्ध नगरी है। वह बहुत समृद्धिशालिनी और गोपुरोंसे शोभित है। उसमें सत्पुरुषोंका निवास है। इन सब शोभाओंसे वह पृथ्वीकी तिलक-सदृश जान पड़ती है। उसके राजाका नाम भूपाल था। वे प्रजाका पालन नीति और प्रेम-पूर्वक करते थे। उनकी रानीका नाम पृथ्वीदेवी था। वह शील-सौभाग्यादि गुणोंसे संसारका एक उज्ज्वल महिला-रत्न थी। इनकी राजकुमारीका नाम रूपकुण्डला था। वह जैसी सुन्दर थी, वैसी विदुषी भी थी। हरएक तरहकी कलाओंको बहुत अच्छा तरह जानती थी। इसके साथ उसमें एक बुराई भी थी। वह यह कि उसे अपनी विद्या, अपने सौन्दर्यका बहुत अभिमान था। अभिमानके मारे वह संसारको तुच्छ समझती थी और चाहे कोई कैसा ही गुणवान् हो, सुन्दर हो, वह सबकी निन्दा ही किया करती थी।

एक दिन रूपकुंडला अपनी सखियोंके साथ वनक्रीड़ा करनेको गई। वहाँ उसने एक दुबले-पतले और पसीने आदिके निकलनेके कारण कुछ मलिन शरीर हुए पिहिताश्रव मुनिको देखा। उन्हें देख कर रूपकुण्डला नाक-भौं सिकोड़ कर मुनिकी निन्दा करने लगी। वह अपनी सखियोंसे बोली—सहेलियो! देखो, यह मुनि कैसा अपवित्र है। जान पड़ता है यह कभी नहाता-धोता नहीं है। देखो, कैसा पशुकी तरह नंगा खड़ा हुआ है। इसे कुछ भी लाज-शर्म नहीं है। बड़ा ही नीच है। मैंने तो कभी ऐसा निर्लज्ज पुरुष नहीं देखा। इसे देखकर मुझे बड़ी घृणा होती है। चलो यहाँसे जल्दी चलो। मुझसे यहाँ खड़ा नहीं रहा जाता। इस प्रकार मुनिकी खूब निंदा करने पर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ। इस कारण चलते समय वह उन्हें पत्थरोंसे भी मारती गई।

ऋषियोंका कहना है, कि प्रचण्ड पापका फल उसी भवमें भी उदय आ जाता है। यही हाल रूपकुण्डलाका भी हुआ। उसने एक संसार-निरीह मुनिराजकी निन्दा कर जो दुष्कर्मोका बंध किया, उससे वह फिर थोड़े दिनभी सुखसे नहीं रह सकी। उसका वह सब स्वर्गीय सौन्दर्य नष्ट हो गया। उसका चाँदसा मुख काला और भयंकर बन गया; मानों चन्द्रमाको सदाके लिए राहुने अपने मुँहमें धर लिया हो। उसका सोनेकासा शरीर देखते देखते काला पड़ गया। यौवन-सरोवर पापकी प्रचण्ड गरमीसे सूख गया। उसकी कमलसी सुन्दर आँखें कुम्हला गईं—उनमें गड्ढे पड़ गए। भौंरेसी काली भौंएँ सफेद हो गईं। कानोंमें छेद हो गए। उसकी कीर-नासासे दिन रात खूनकी धारा बहने लगी। कोढ़ निकल आया। उससे उसके सब हाथ-पाँव गल गए। मानों स्वर्गकी सुन्दरीने नारकी-विक्रिया धारण कर ली हो। रूपकुण्डलाके इस प्रसादसे उसके पास रहनेवाली सखियाँ भी न बच सकीं। उनके रूपमें भी कुछ कुछ विकृतपना दिखाई पड़ने लगा। अग्निकी भयंकर ज्वालासे उसके आस-पासकी वस्तुएँ भी जल जाती हैं।

रूपकुंण्डलाने अपने रूपका आकस्मिक परिवर्तन देख कर सोचा—यह क्या हो गया? एकदम मेरी ऐसी दशाके होनेका क्या कारण है? विचारते विचारते उसे याद आया कि हाँ मैं अब समझी। उस दिन मैंने जो उस साधुकी बहुत निन्दा की थी और उस बेचारेने तब भी मुझसे कुछ नहीं कहा था—अपना घोर अपमान सह कर भी उसने मुझे कोई हानि नहीं पहुँचाई थी, जान पड़ता है कि वह कोई साधारण पुरुष न होकर बड़ा भारी सिद्ध है और उसीकी निन्दाका मुझे यह भयंकर फल मिला है। तब मुझे उन्हींकी शरणमें जाना चाहिए। वे ही अब मुझे इस पापसे छुड़ा सकेंगे।

यह विचार कर रूपकुण्डला अपनी सखियोंके साथ उन्हीं मुनिके पास पहुँची और उन्हें नमस्कार कर बोली—भगवन्! मेरी रक्षा कीजिए। मुझ पापिनीने आपका बड़ा भारी अपराध किया है। स्वामी! मैं नहीं जानती थी कि मुझे अज्ञानका ऐसा घोर फल मिलेगा। प्रभो, आप संसारका उपकार करनेवाले हैं, सब जीवों पर दया करते हैं और उनको हितका उपदेश देकर कुगतियोंके दुःखोंसे बचाते हैं। नाथ! मैं भी पापकी कठिन मारसे मरी जा रही हूँ। मेरे अपराधको क्षमा कर मुझे बचाइए—मेरा उद्धार कीजिए। आपके बिना कोई मेरी रक्षा करनेको समर्थ नहीं है। दयासागर! आपके पाँवों पड़ती हूँ, मेरी रक्षा कीजिए।

मुनिने कहा—राजकुमारी! संसारमें कोई किसीका रक्षक नहीं है। सबका रक्षक उनका पुण्य-कर्म है। इसलिए तू भी पुण्यके द्वारा अपने पापोंको नष्ट करनेका प्रयत्न कर। मैं तुझे सुमार्ग पर चलनेका रास्ता बतलाए देता हूँ। उस पर चल कर तू अपनी आत्माका उद्धार कर सकेगी। सुन, वह मार्ग यह है, कि तू मिथ्यात्वको छोड़ कर शुद्ध सम्यग्दर्शन और कर्मोंके नाश करनेवाले पवित्र जिनधर्मको ग्रहण कर, इससे तुझे शान्ति मिलेगी, तेरे पाप नष्ट होंगे।

राजकुमारी बोली—नाथ! किसे तो सम्यग्दर्शन कहते हैं और किसे धर्म कहते हैं? यह तो मैं कुछ भी नहीं समझती। फिर मैं किसे ग्रहण करूँ? इसलिए इनका खुलासा स्वरूप समझा दीजिए।

मुनिराज बोले—अच्छी बात है। सुन, मैं तुझे सब समझाए देता हूँ। सच्चे देव, सच्चे गुरु, और सच्चे शास्त्र अथवा सात तत्वोंके श्रद्धान करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं।

सच्चे देव वे हैं, जिनमें राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, भूख, प्यास, आदि दोष नहीं हैं, जो सारे संसारके जाननेवाले अर्थात् सर्वज्ञ हैं, सबके हितका उपदेश करनेवाले हैं, जिन्हें इन्द्र चक्रवर्ती आदि बड़े बड़े पुरुष भी सिर झुकाते हैं, और जिनसे सब अपने कल्याणकी चाह करते हैं।

सच्चे गुरु वे हैं जिन्हें इन्द्रियोंकी लालसा कभी छू भी नहीं पाती—संसारी जीवोंकी तरह वे इन्द्रियोंके गुलाम न बन कर उन्हें अपना गुलाम बनाए हुए हैं; जिन्होंने इन्द्रियोंको अपने वश कर लिया है; जिनके पास न धन-दौलत है, न चाँदी सोना है, न हीरा-माणिक है, न घर-बार है, न स्त्री-पुत्र है अर्थात् वे सबसे मोह छोड़े रहते हैं; और जो न धंदा-रोजगार करते हैं, न घर-बार बसाते हैं, न खेती-बाड़ी करते हैं; किन्तु सदा शान्त-चित्त रह कर आत्मानुभव, शास्त्राभ्यास, ध्यान आदि किया करते हैं, जिनके लिए तलवार चलानेवाला शत्रु और उपकार करनेवाला मित्र, निन्दा करनेवाला, स्तुति करनेवाला, तथा महल, मसान, काँच, कंचन-ये सब समान हैं—जिनकी सब पर समान दृष्टि है।

सच्चा शास्त्र वह है जिसे सर्वज्ञने बनाया है; क्योंकि सर्वज्ञके बिना पदार्थोंका ठीक ठीक वर्णन कोई नहीं कर सकता; और न भूत भविष्यत्, वर्तमानके जाने बिना पदार्थोंका वर्णन ही हो सकता है। इसलिए सर्वज्ञ ही सच्चा शास्त्र रच सकता है। इसके सिवाय जिसमें किसी तरहका विरोध न आता हो—जैसाकि अन्य शास्त्रोंमें कहीं तो देखा जाता है कि '**मा हिंस्यात् सर्वभूतानि**' अर्थात् किसी जीवकी हिंसा मत करो; और कहीं इसके विरुद्ध देखा जाता है—जैसा कि "**न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्तिरेषा**

भूतानां निवृत्तिस्तु महाफलम् ॥" अर्थात् न मांस खानेमें दोष है, न शराब पीनेमें दोष है, और न व्यभिचार सेवनमें दोष है; किन्तु ये तो जीवोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ हैं। हाँ, यदि ये छूट जायँ तो अच्छा है। इस प्रकारका विरोध न हो। अर्थात् जो स्वार्थियोंका रचा हुआ न होकर निःस्वार्थी, परम वीतरागी, और संसारके हित करनेवाले महापुरुषोंका रचा हुआ हो और जिसमें कुमार्गों—संसारमें भ्रमण करनेवाले मिथ्यामार्गोंका खण्डन किया जाकर जीवोंको सुखका रास्ता बतलाया गया हो। इसके सिवा जिसे न तो कोई वादी प्रतिवादी बाधा पहुँचा सके और न जिसमें प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाणसे विरोध हो। वही सच्चा और हितैषियों द्वारा आदर करने योग्य शास्त्र है।

तत्व सात हैं:—

जीव—जिसमें चेतना—दर्शन और ज्ञान पाए जायँ।

अजीव—जिसमें ज्ञान और दर्शन न हों—जो जड़ हो।

आस्रव—जो कर्मोंके आनेका रास्ता हो अर्थात् जिसके द्वारा कर्म आते हों।

बंध—आत्मा और कर्मोंके प्रदेश परस्पर एक क्षेत्रावगाह होकर—परस्पर मिल कर जो एकत्व-बुद्धिको उत्पन्न करते हैं वह बन्ध है। जिस भाँति चाँदी और सोनेको मिला कर गलानेसे अथवा दूधमें पानी मिला देनेसे वे भिन्न भिन्न दो पदार्थ होने पर भी एक जान पड़ते हैं, उसी भाँति आत्माके साथ कर्मोंका जो एकत्व-सम्बन्ध हो जाता है, जिससे उनका जुदापन नहीं जान पड़ता, वही बंध है।

संवर—आते हुए कर्मोंके रुक जानेको संवर कहते हैं। जैसे नाँवमें कहीं छेद होनेसे उसके द्वारा जो जल आता रहता है और उस छेदको बन्द कर देनेसे उस जलका आना रुक जाता है,

वैसे ही मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय आदिके द्वारा जो कर्म आते हैं, उन्हें दशलक्षण धर्म, बारह भावना, तीन गुप्ति, पाँच समिति आदि द्वारा रोक देना, यह संवर है।

निर्जरा—पूर्वके बँधे कर्मोंका एक देश अर्थात् कुछ अंश नष्ट होनेको निर्जरा कहते हैं।

मोक्ष—कर्मोंके पूर्ण-रूपसे नष्ट हो जानेको मोक्ष कहते हैं। जो जीव मोक्ष चले जाते हैं, वे फिर संसारमें नहीं आते। संसारके कारण कर्मोंको उन्होंने नष्ट कर दिया है। वे अनन्त काल तक वहीं रहेंगे और अपने स्वभावसे उत्पन्न होनेवाले अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-सुख, और अनन्तवीर्य आदि परमोत्कृष्ट गुणोंको भोगते रहेंगे।

इस प्रकार देव, गुरु, शास्त्र, और सात तत्वोंके श्रद्धान अर्थात् निश्चय करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं।

अब धर्मका स्वरूप सुन। धर्म दो प्रकार है। एक मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थधर्म। मुनिधर्म महाव्रतरूप है और श्रावकधर्म अणुव्रतरूप है। मतलब यह कि जैसे हिंसाका त्याग मुनि और श्रावक दोनोंके होता है, पर उसमें विशेषता यह है कि मुनि तो त्रस और स्थावर—इन दोनों हिंसाका मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदनासे त्याग करते हैं, और श्रावक केवल संकल्पी त्रस-हिंसाका त्याग करते हैं और अपने योग्य स्थावर-हिंसा करते हैं। कारण बिना ऐसा किये गृहस्थाश्रम चल ही नहीं सकता।

गृहस्थोंके पाँच अणुव्रत—

अहिंसाणुव्रत—मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदनासे किसी जीवकी अर्थात् दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, और पँचेन्द्रिय जीवोंकी इस संकल्पसे कि 'मैं इसे मारूँ' न स्वयं हिंसा करे, न किसी

दूसरेसे करावे और न हिंसा करनेवालोंकी कभी प्रशंसा करे; यह अहिंसाणुव्रत है।

सत्याणुव्रत—जिस झूठके द्वारा लोग बुरा कहें, निन्दा हो और अपना विश्वास उठ जाय—कोई अपने बचनोंकी प्रतीति न करे, उसे कभी न बोलना चाहिए, और न दूसरोंसे बुलवानी चाहिए। इसके सिवा ऐसा सत्य भी बोलना उचित नहीं, जिसके द्वारा बिना कारण किसीके प्राण नष्ट हों; यह सत्याणुव्रत है।

अचौर्याणुव्रत—किसीके रखे हुए, गिरे हुए, भूले हुए, धनको न स्वयं ले और न उसे उठा कर दूसरोंको दे; यह अचौर्याणुव्रत है।

ब्रह्मचर्याणुव्रत—पुरुष अपनी स्त्रीके सिवा अन्य स्त्री-मात्रको माता बहिनके समान गिनें। इसी भाँति स्त्रियाँ अपने पतिके सिवा अन्य पुरुष-मात्रको पिता-भाईके समान समझें; यह ब्रह्मचर्याणुव्रत है। इसीका दूसरा नाम स्वदारसंतोषव्रत भी है।

परिग्रहपरिमाणाणुव्रत—धन-धान्य, दासी-दास, चाँदी-सोना आदि वस्तुओंकी मर्यादा करना अर्थात् अपने संतोषके अनुसार मैं इतना धन रखता हूँ, इतना सोना-चाँदी रखता हूँ, इतने नौकर-चाकर रखता हूँ; इस प्रकार परिमाण करनेको परिग्रहपरिमाणाणुव्रत कहते हैं। अर्थात् जिससे अपनी लोकयात्रा सुखसे बीते, धर्मका शांतिके साथ साधन हो, और किसी तरहकी आकुलता न हो, उतना धन-धान्य आदि रख कर विशेष तृष्णाको घटाना चाहिए। यह व्रत लोभ घटाने और निराकुलता बढ़ानेके लिए है। और लोभ तब ही घटता है जब तृष्णा नष्ट करदी जाती है। इसलिए सुख-शान्तिकी प्राप्तिके लिए परिग्रह-प्रमाणाणुव्रतका पालन करना आवश्यक है।

पुत्रि! इन पाँच अणुव्रतोंको तू धारण कर। व्रत तो और भी हैं, पर अभी तेरे लिए ये ही उपयुक्त हैं। इसके अतिरिक्त इतना और करना कि सुपात्रोंको सदा दान देना, रात्रिमें कभी भोजन न करना, कंदमूल और अचार न खाना, तथा ऐसी कोई वस्तु न खाना जिसका स्वाद बेस्वाद हो गया हो; और न कभी चमड़ेमें रखा हुआ घी, तेल, जल आदि खाना और पीना। ये सब बातें अहिंसाणुव्रत पालनेवालेके लिए बहुत आवश्यक हैं। इसलिए इनकी ओर सदा ध्यान रखना।

रूपकुण्डला इस प्रकार गृहस्थधर्मका उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुई। इसके बाद उसने और उसकी सखियोंने श्रावकधर्म ग्रहण भी कर लिया।

इसके सिवा मुनिराजने उसे भक्तामर-स्तोत्रके 'उच्चैरशोक' इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करना बतला दिया।

घर पर आते ही रूपकुण्डलाने और उसकी सखियोंने विधिके अनुसार मंत्रकी आराधना करना शुरू करदी। कुछ दिनों बाद मंत्रके प्रभावसे उन सबका शरीर पहलेसे भी कहीं बढ़कर सुन्दर हो गया। यह देख वे बड़ी प्रसन्न हुईं। सच है धर्मके प्रभावसे क्या नहीं होता?

रूपकुण्डलाका शरीर सुन्दर हो गया, और वह सुखसे रहने भी लगी; परन्तु उसके हृदयमें यह खटका सदा बना रहता था कि मैंने जो मुनिराजकी निन्दा द्वारा अनन्त पाप उत्पन्न किया है, उसका अन्त कैसे होगा? और यदि इस भवमें वह नष्ट नहीं हुआ तो न जाने मुझे कुगतियोंमें कितना दुःख भोगना पड़ेगा? इसलिए उचित तो यही है कि मैं इस क्षणिक संसारसे मोह छोड़ कर कल्याणका मार्ग ग्रहण करलूं। उससे मेरे आत्माका कल्याण होगा और मुनिनिन्दाके पापका नाश होकर मुझे सुगतिकी प्राप्ति होगी।

यह विचार कर रूपकुण्डला सब बन्धु-बांधवोंसे मोहपाश तुड़ा कर अपनी कुछ सखियोंके साथ साध्वी बन गई और फिर अपनी शक्तिके अनुसार खूब तप कर स्वर्गमें चली गई।

भक्तामर-स्तोत्रका इस प्रकार आचिंत्य और अश्रुतपूर्व महात्म्य देखकर बहुतसे अन्य धर्मियोंने जैनधर्म स्वीकार किया। बिना कारणके कार्य नहीं होता है।

ऋषियोंने जो यह लिखा है कि 'धर्मात्सर्वसुखं नृणां' वह बहुत ही सत्य लिखा है। इसलिए जिन्हें अपनी आत्माको कुगतियोंके दुःखोंसे बचा कर सद्गतिमें पहुँचाना है, जिन्हें शत सहस्रों आकुलताओंसे जर्जरित अपने जीवनको शान्ति-सुधा-धारा द्वारा अमर बनाना है और जिन्हें अनन्त-अगाध, संसार-समुद्र पार करके अनंत, अविनश्वर, अखण्ड, अचिन्त्य मोक्ष-सुख प्राप्त करना है, उन्हें उचित है—उनका कर्त्तव्य है कि वे धर्मरूपी अमोल रत्नकी प्राप्तिसे अपने आत्माको रहित न होने दें। यह लाख बातकी एक बात है। इसे हृदयमें लाना चाहिए।

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलतावितानं
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः॥ २९॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

सिंहासन स्फटिक-रत्न जड़ा, उसीमें
भाता विभो! कनककान्त शरीर तेरा।
ज्यों रत्न-पूर्ण-उदयाचल शीशपै जा
फैला स्वकीय किरणें रवि-बिम्ब सोहे॥

हे भगवन्! रत्नोंकी किरणोंसे विचित्र सुन्दरता धारण करनेवाले सिंहासन पर सोनेके समान आपका निर्मल शरीर ऐसा सुन्दर जान पड़ता है, मानों उदयाचल पर्वतके शिखर पर सूर्यबिम्ब, जिसकी कि किरणें आकाशमें सब ओर फैल रही हैं, शोभता हो।

जयसेनाकी कथा।

जो जन इस श्लोकके मंत्रकी शुद्ध भावोंसे आराधना करते हैं वे रोगादि रहित होकर सुन्दर शरीरके धारक होते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है।

अंकलेश्वर नामक एक नगर है। उसके राजाका नाम जयसेन है। और उनकी रानीका नाम जयसेना है। राजा जैनी हैं, और रानी मिथ्यात्वकी पालन करनेवाली है।

एक दिन गुणभूषण मुनि आहारके लिए अंकलेश्वरमें आए। वे बड़े ज्ञानी थे और तप भी खूब करते थे। उससे उनका शरीर बहुत कृश हो गया था। राजाने उन्हें अतिशय श्रद्धा-भक्तिके साथ पवित्र आहार करा कर बहुत पुण्य बंध किया।

रानीको यह बहुत बुरा जान पड़ा। उसका मन जैन-साधुओंके सम्बन्धमें बहुत खराब रहा करता था। वह सदा कुगुरुओंकी प्रशंसा और जैन-मुनियोंकी निन्दा किया करती थी। उसने गुणभूषण मुनिकी भी निन्दा की। वह मन-ही-मन कहने लगी—यह कैसा धृष्ट है—निर्लज्ज है, जो न किसीके कुलीन घरको देखता है और न राजघरानेका विचार रखता है, किन्तु पशुओंकी तरह जहाँ तहाँ चला आता है। इसे घर घर भीखके लिए मारे मारे फिरते लज्जा भी नहीं आती। फिर इसकी यह कितनी बड़ी भारी मूर्खता है जो अत्यन्त सुलभतासे प्राप्त होनेवाले वनके पवित्र अन्न, शाक, कन्दमूल आदि तो खाता

नहीं, जो कि गुरुओंके खाने योग्य हैं, और घर घर भीख माँगता फिरता है। इस पापीका देखना ही पाप है, छूना तो दूर रहा। इस पर भी हमारे महाराजकी अंध-भक्ति बड़ी ही विलक्षण है। जो सच्चे और सभ्य गुरु आते हैं उन्हें तो कभी भोजनका एक टुकड़ा भी नहीं देते और ऐसे नंगे, निर्लज्ज, असभ्य, भिखमंगोंकी भक्ति-पूजाके मारे गद्गद हो उठते हैं। मेरा वश पड़ता तो मैं इन्हें राज्यभरसे निकाल बाहर करती।

इस प्रकार रानीने शान्त-सीधे तपस्वी, शत्रु मित्र पर समान भाव रखनेवाले और परम वीतरागी मुनिकी खूब निन्दा की और आहार करके जाते समय उन्हें दो चार बुरे वचन भी सुना दिए। पर मुनिराज उसकी कुछ परवा न कर शान्तिके साथ वनकी ओर चल दिए।

इसके कुछ ही दिनों बाद मुनिकी निन्दाके फलसे रानीके कोढ़ निकल आया। उसकी सब रूप-सुधा विरूप-विषके रूपमें परिणत हो गई। सारा शरीर अग्निसे झुलसे हुएकी भाँति दीखने लगा। उससे बदबू निकलने लगी। पीब, खून आदि बहने लगा। हाथ-पाँव गल निकले। सच है-तीव्र पापका फल उसी जन्ममें मिल जाया करता है।

रानीकी थोड़े दिनोंमें ऐसी हालत देख कर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने रानीसे पूछा—सच तो कहो कि एकाएक यह क्या हो गया?

रानी बोली—महाराज! उस दिन अपने यहाँ जो वे महातपस्वी और ज्ञानी मुनि आहारके लिए आए थे, मैंने उनकी बेहद निंदा कर उन्हें बुरे बचन कहे थे। जान पड़ता है उसी महापापका यह

फल उदय आया है। राजा बोले—पापिनी! तूने बहुत बुरा काम किया। तू नहीं जानती कि महामुनिकी निन्दा करनेसे नरकोंमें जाना पड़ता है। नरकका नाम सुनते ही रानी काँप उठी। वह उसी समय पालखीमें बैठ कर मुनिराजके पास पहुँची और उन्हें बड़ी भक्तिसे प्रणाम कर बोली—नाथ! मैंने अज्ञानके वश होकर आपकी बहुत निंदा की थी। मैं अपना बुरा-भला स्वयं नहीं जानती थी। यही कारण था कि मुझ पापिनीसे आपका गुरुतर अपराध बन पड़ा। नाथ! मुझपर क्षमा करके मेरी रक्षा कीजिए। क्योंकि साधु-लोग बड़े ही क्षमाशील होते हैं, और वे क्षमा ही करते हैं।

रानीने मुनिके उपदेशानुसार सम्यग्दर्शन-पूर्वक गृहस्थधर्म ग्रहण किया। इसके बाद रानी मुनिको नमस्कार कर जब अपने महल पर जाने लगी तब मुनिराजने उसे इतना और समझा दिया कि तुम कुछ दिनों तक प्रतिदिन हमारे पास आकर इस बीमारीकी शान्तिके लिए मंत्रा हुआ जल छिड़कवा जाया करो। रानीने वैसा ही किया। कुछ दिनों बाद उसकी हालत सुधरते सुधरते फिर जैसीकी तैसी हो गई। यह देख महाराज और रानी बहुत प्रसन्न हुए। धर्मके प्रभावसे रानीकी यह दशा देख कर बहुतसे लोगोंकी श्रद्धा जैनधर्म पर बढ़ गई और बहुतोंने पवित्र धर्मकी शरण ग्रहण की।

मुनि दया करके रानीसे बोले—देखो! धर्मसे राज्य मिलता है, धर्मसे सब सम्पत्ति प्राप्त होती है, धर्मसे गुरुतरसे गुरुतर पाप नष्ट होते हैं, धर्मसे स्वर्ग मिलता है, और धर्मसे ही मोक्ष मिलता है। इसलिए तुम सम्यग्दर्शन-पूर्वक गृहस्थधर्म स्वीकार करो। उससे तुम्हारा यह सब दुःख शान्त होगा। इतना कह कर मुनिने

उसे सम्यग्दर्शन, आठ मूलगुण, पाँच अणुव्रत, सात शील आदिका स्वरूप समझा दिया।

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम्॥ ३०॥
छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैस्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम्।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम्॥ ३१॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

तेरा सुवर्णसम देह विभो! सुहाता
है, श्वेत कुन्दसम चामरके उड़ेसे।
सोहे सुमेरुगिरि; कांचन कांतिधारी,
ज्यों चन्द्रकान्तिधर निर्झरके बहसे॥
मोती मनोहर लगे जिनमें, सुहाते
नीके हिमांशुसम, सूरजतापहारी-
हैं तीन छत्र शिरपै अतिरम्य तेरे,
जो तीन-लोक-परमेश्वरता बताते॥

हे भगवन्! समवशरणमें आपके सोनेके समान सुन्दर शरीर पर जो इन्द्रादिक देव कुन्दपुष्पके समान उज्ज्वल चँवर ढोरते हैं, उस समयकी सुन्दर शोभा ऐसी दीख पड़ती है मानों सुमेरु पर्वतके सुवर्णमय तटसे गिरते हुए झरनेकी चन्द्रमा-समान निर्मल जलकी धारा गिर रही हो।

हे प्रभो! चन्द्रमाके समान मनोहर, सूर्यके प्रभावको रोकनेवाले-सूर्यसे भी कहीं बढ़कर तेजस्वी, और सुन्दरतासे जड़े हुए मोतियोंसे अत्यन्त शोभाको धारण करनेवाले आपके ऊपर घूमते हुए तीन छत्र, ऐसे शोभते हैं मानों वे संसारमें यह प्रगट कर रहे हैं कि तीनों जगत्के परमेश्वर आपही हैं।

नरपाल ग्वालकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मंत्रोंकी आराधना करनेवाले युद्धमें विजय प्राप्त कर निर्भय होते हैं। इसकी कथा नीचे लिखी जाती है।

सिंहपुर नामका एक सुन्दर नगर है। उसमें नरपाल नामका एक ग्वाल रहता है। दरिद्रताके कारण वह अपनी कुछ गायोंको लेकर जंगलमें चला गया और वहीं रह कर अपना निर्वाह करने लगा। उसके भाग्यसे एक दिन उसी जंगलमें समाधिगुप्त नामके महामुनि आ गए। उन्हें देख कर वह बहुत प्रसन्न हुआ। इसके बाद वह उन्हें प्रणाम कर उनके चरणोंके सामने बैठ गया और हाथ जोड़कर बड़े विनयसे बोला-दयासागर! मैं बड़ा दरिद्र हूँ। मेरे पास खानेका भी ठिकाना नहीं है। इसलिए कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे इस पापिनी गरीबीसे मेरा पिंड छूट जाय। महाराज! मैं बहुत दुखी हो गया हूँ।

मुनिराज बोले—भाई धर्म सबका सहायक है। तू भी उसे धारण कर। वह तेरी भी सहायता करेगा। यह कह कर मुनिराजने उसे धर्मका साधारण स्वरूप समझा कर अंतमें भक्तामरकी आराधना करनेको कहा; और उसके साथ मंत्र बतला कर यह कह दिया कि इसकी प्रतिदिन जाप किया करना। ग्वालको मंत्र जपते जपते छह महीने बीत गए। एक दिन चक्रेश्वरीने आकर उससे कहा—मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ और तुझे वर देती हूँ कि तू राजा होगा। पर याद रखना—जिस धर्मके प्रभावसे तू राजा होगा फिर कहीं ऐश्वर्यके अभिमा-

नमें मत्त होकर तू उसे ही मत भूल जाना। ध्यान रखना कि बिना जड़के डालियाँ नहीं हुआ करती हैं।

इस समय सिंहपुरके राजाकी मृत्यु हो गई। उनके कोई पुत्र नहीं था। अब राज्यका मालिक कौन हो, इस बातकी राजमंत्रियोंको बड़ी चिंता हुई। आखिर यह निश्चय किया गया कि महाराजकी हथिनीको जलसे भरा सोनेका कलश देकर छोड़ देनी चाहिए। वह उस जलसे जिसका अभिषेक करे उसको राजा बनाना चाहिए। यह बात सबके ध्यानमें आ गई। वैसाही किया गया। हथिनीको कलश देकर वह छोड़ दी गई। हथिनी धीरे धीरे वहीं पहुंच गई जहाँ नरपाल बैठा हुआ था। हथिनीने जाकर उसीका अभिषेक कर दिया। उसी समय जय-ध्वनिसे आकाश गूँज उठा। नरपाल लाकर राज्यसिंहासन पर बैठा दिया गया। नरपाल राजा तो बन गया, पर उसके विरुद्ध बहुतसे राजे हो गए। कारण एक नीच कुलका मनुष्य क्षत्रियों पर शासन करे यह उन्हें कैसे सहन हो सकता था। वे उसके साथ युद्ध करनेको तैयार हो गए। नरपाल भी पीछा पग न देकर आगे बढ़ा और मंत्रकी आराधना कर चक्रेश्वरीकी सहायतासे उसने सब शत्रुओंको वश कर अपनी विजयपताका सर्वत्र फहरा दी।

जिन भगवानकी स्तुतिके प्रभावसे जब स्वर्गकी सम्पदा भी प्राप्त हो सकती है तब उसके सामने राज्य-विभूतिका मिल जाना तो साधारण बात है। जिस रत्नकी इतनी कीमत है कि उसके द्वारा तीनों लोक खरीद किये जा सकते हैं उसके द्वारा भूसेका खरीदना दुर्लभ नहीं। तब जो सुख चाहते हैं उन्हें धर्मका पालन अवश्य ही करना चाहिए।

धर्मके प्रभावसे एक ग्वालेकी इतनी उन्नति देख कर बहुतोंने जिन-धर्म स्वीकार किया। धर्मकी बड़ी प्रभावना हुई।

गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः ।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥ ३२ ॥
मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।
गन्धोदबिन्दुशुभमन्दमरुत्प्रपाता
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥ ३३ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

गंभीर नाद भरता दश ही दिशामें,
सत्संगकी त्रिजगको महिमा बताता,
धर्मेशकी कर रहा जयघोषणा है,
आकाश बीच बजता यशका नगारा ॥
गन्धोद-बिन्दुयुत मारुतकी गिराई,
मन्दारकादि तरुकी कुसुमावलीकी—
होती मनोरम महा सुरलोकसे है
वर्षा; मनो तव लसे वचनावली है ॥

नाथ, जिसने अपने गंभीर और मनोहर शब्दों द्वारा सब दिशाओंको शब्दमय कर दिया है, जो त्रिभुवनके प्राणियोंको उत्तम वस्तुओंके प्राप्त करानेमें समर्थ है, जो सद्धर्मराज अर्थात् परम भट्टारक तीर्थंकर भगवानकी संसारमें जय-घोषणा कर रहा है अर्थात् यह बतला रहा है कि पवित्र धर्मके अधीश्वर–प्रवर्त्तक आप ही हैं, और जो आपका सुयश प्रगट कर रहा है वह दुन्दुभि आकाशमें शब्द कर रहा है ।

हे प्रभो ! देवों द्वारा की गई जो मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात आदि कल्प-वृक्षोंके फूलोंकी सुगन्धित जल-बिन्दु-मिश्रित दिव्य वर्षा मन्द मन्द वायुके साथ आकाशसे गिर रही है, वह ऐसी जान पड़ती है मानों आपके वचनोंकी या पक्षियोंकी श्रेणी हो ।

मदनसुंदरीकी कथा।

उक्त श्लोकोंके मंत्रोंकी आराधनासे जीवोंको निरोगता प्राप्त होती है। उसके प्रभावको प्रकट करनेवाली और मिथ्या-मतकी नाश करनेवाली कथा इस प्रकार है:—

अवन्ति देशमें उज्जयिनी प्रसिद्ध नगरी है। उसके राजाका नाम महीपाल था और उनकी रानीका नाम मदनसुन्दरी था। वह पूर्व जन्मके पापके उदयसे बहिरी थी और उसके शरीरसे सदा दुर्गन्ध निकलती रहती थी। उसके हाथ-पाँवोंकी सब शोभा नष्ट हो गई थी। रूप भी उसका बहुत बुरा दीखता था। इतने पर भी राजाका उस पर पूर्ण प्रेम था। इस कारण उन्होंने उसके रोगकी शान्तिके लिए बहुत कुछ उपाय किये, बहुतसे मंत्र-तंत्र करवाये, पर किसीसे उसे आराम नहीं पहुँचा।

एक दिन किसी जैनीने राजासे कहा—महाराज! मेरे गुरु धर्मसेन मुनि इस विषयके बहुत अच्छे विद्वान् हैं। इसलिए आप उनसे महारानीका हाल कहिए। उन्होंने यदि इलाज करना स्वीकार कर लिया तब निश्चय समझिए कि महारानीको आराम हो जायगा। यह सुन कर राजा मुनिको बड़े आदर-सम्मानके साथ नगरमें ले आए। इसके बाद वे महारानीको दिखला कर बड़े विनयसे बोले—गुरुराज! यदि महारानीको आराम हो गया तो मैं नियमसे जिनधर्मको स्वीकार कर लूँगा।

इस पर मुनिराजने कहा—इस समय इस विषयमें मैं ठीक उत्तर नहीं दे सकता; कल सबेरे जो कुछ होगा वह कह दूँगा। यह कह कर वे वनमें चले गए। रातको वे सोए हुए थे। उस समय चक्रेश्वरीने आकर उनसे कहा—प्रभो! कुछ चिंता न कीजिए, धर्मके प्रभावसे सब

अच्छा होगा । भगवन् ! यह तो बहुत साधारण बात है । इसका आराम हो जाना कोई बड़ी बात नहीं । आप भक्तामरकी आराधना करके महारानीके शरीरका स्पर्श कीजिए । ऐसा करनेसे बहुत शीघ्र रानी स्वस्थ हो जायगी । इतना कह कर देवी अपने स्थान पर चली गई और मुनिराज सो रहे ।

प्रातःकाल महाराज मुनिराजके पास गए और उनसे अपनी बातका उत्तर पानेकी प्रार्थना की । मुनिराजने कहा—आप महारानीको यहीं बुलवा लीजिए, मैं यहीं उनका इलाज करूँगा । उसी समय महारानी महलसे बुलवाई गईं । वे आकर हाथ जोड़ कर मुनिराजके सामने बैठ गईं ।

इसके बाद मुनिराजने मंत्रकी आराधना करके रानीके शरीरको छुआ । उनके छूनेके साथ ही रानीका सारा शरीर स्वस्थ हो गया । उसमें वह दुर्गन्ध, वह विवर्णता अब न रही । वह तपाये हुए सोनेकी भाँति बन गया । यह देख राजा और रानीको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने मुनिराजके पास अपनी बहुत बहुत कृतज्ञता प्रकाश की ।

राजाने अपने वचनोंका पालन किया । वे जैनी हो गए । उनके साथ और भी बहुतसे लोगोंने मिथ्यात्व छोड़ कर पवित्र जिनधर्म स्वीकार किया । धर्मकी अत्यन्त प्रभावना हुई ।

शुम्भत्प्रभावलय भूरिविभा विभोस्ते
लोकत्रयद्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।
प्रोद्यद्दिवाकरनिरन्तरभूरिसंख्या
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्याम् ॥३४॥

स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः
सद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः ।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-
भाषास्वभावपरिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥

हिन्दी–पद्यानुवाद ।

त्रैलोक्यकी सब प्रभामय वस्तु जीती,
भामण्डल प्रबल है तव नाथ ! ऐसा ।
नाना प्रचण्ड रवि-तुल्य सुदीप्तिधारी
है जीतता शशि सुशोभित रातको भी ॥
है स्वर्ग-मोक्ष-पथदर्शनकी सुनेता,
सद्धर्मके कथनमें पटु है जगोंके ।
दिव्यध्वनि प्रकट अर्थमयी प्रभो ! है
तेरी; लहे सकल मानव बोध जिस्से ॥

प्रभो ! त्रिभुवनके सब कान्तिमान् पदार्थोंकी कान्तिको जीतनेवाली, आपकी चमकती हुई भामण्डलकी अनन्त प्रभा, एक साथ ऊगे हुए अनेक सूर्योंके सदृश होकर भी अपनी ज्योतिसे शीतल चाँदनी रातको पराजित करती है । अर्थात् आपकी प्रभा सूर्यसे अधिक तेजस्विनी होकर भी लोगोंको सन्ताप देनेवाली नहीं है–बहुत शीतल है ।

नाथ ! स्वर्ग और मोक्षके मार्गको बतानेवाली तथा त्रिभुवनके लोगोंको श्रेष्ठ धर्म-तत्त्वका उपदेश करनेमें समर्थ आपकी दिव्यध्वनि स्वभावसे ही सब भाषाओंमें पदार्थोंका विस्तृत स्वरूप वर्णन करनेवाली है । अर्थात् आपकी दिव्यध्वनिका परिणमन सब प्रकारकी भाषाओंमें होता है । उसे सब प्राणी अपनी अपनी भाषामें विस्तारके साथ समझ लेते हैं । यह आपका अचिन्त्य प्रभाव है ।

भीमसेनकी कथा ।

इन श्लोकोंके मंत्रोंकी आराधनासे नष्ट हुई सुन्दरता फिरसे प्राप्त हो जाती है । उसकी कथा नीचे लिखी जाती है ।

भारतवर्षमें बनारस प्रसिद्ध नगर है। विद्वानोंका वह घर है। जिधर देखो उधर ही ब्राह्मणोंके मुँहसे वेदध्वनि सुनाई पड़ती है। नगर बड़ा सुन्दर है। उसमें बड़े बड़े धनवान् रहते हैं। उनके गगन-चुम्बि महलोंको देख कर स्वर्गकी याद हो उठती है।

उसके राजाका नाम भीमसेन है। वे बुद्धिशाली और प्रजाके अत्यन्त प्यारे हैं। सुन्दरता उनके चरणोंकी दासी है। मानों संसारमें चन्द्रमा, कमल आदि जितने सुन्दर सुन्दर पदार्थ हैं, उन्हींके द्वारा उनके शरीरकी ब्रह्माने सृष्टि की है।

एक बार अकस्मात् उनके कोई ऐसा पापका उदय आया, जिससे उनकी सब सुन्दरता नष्ट हो गई; और उनका सारा शरीर अग्नि-ज्वालासे झुलसे हुएकी भाँति हो गया। उनके पास अनन्त वैभव, निष्कंटक राज्य, और एकसे एक बढ़कर सुन्दर स्त्रियां थीं। पर वह सब एक रूपके बिना उन्हें निस्सार जान पड़ने लगा। उन्हें दिन-रात इसी विषयकी चिन्ता रहने लगी।

एक दिन उनने सुना कि नगरके बाहर एक तपस्वी मुनि आए हैं। उनका नाम पिहिताश्रव है। मुनिका आगमन सुन कर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे उनकी वन्दनाके लिए गए। मुनिराजकी बहुत श्रद्धाके साथ उन्होंने पूजा, स्तुति की। इसके बाद समय देख कर उनने पूछा कि प्रभो! पहले मैं बहुत सुन्दर था। लोग मेरे रूपको देख कर मुझे कामदेव कहा करते थे; पर कुछ दिनोंसे न जाने एकाएक क्या हो गया, जिससे मेरी यह हालत हो गई। इसलिए कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे मेरी चिन्ता मिट कर मैं सुखी हो सकूँ। जैसा आप कहेंगे उसे करनेके लिए मैं तैयार हूँ। मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा कीजिए।

मुनिने कुछ सोच कर कहा कि आपको तीन दिन तक सबेरे, दोपहर और सायंकाल यहाँ आना चाहिए। राजा मुनिकी आज्ञा स्वीकार कर और उन्हें नमस्कार कर अपने महल लौट आए। इसके बाद दूसरे दिनसे वे उनके पास तीनों समय जाने लगे। मुनिने 'शुंभत्प्रभा' और 'स्वर्गापवर्ग' इन दो श्लोकोंकी आराधना की और उससे मंत्रा हुआ जल राजा पर छींटना शुरू किया। मंत्रके प्रभावसे राजाका शरीर पहलेकी भाँति सुन्दर हो गया। इससे उन्हें जो प्रसन्नता हुई उसका वर्णन करना असंभव है। इसके बाद उनने मुनिराजके कहे अनुसार जीवहिंसा छोड़ कर दयाधर्म स्वीकार किया और साथ ही श्रावकोंके व्रत धारण किये।

इसके सिवाय उनने अपने देशभरमें यह मनादी पिटवा दी कि "मेरे राज्य-भरमें कोई जीवहिंसा न करने पावे। फिर वह चाहे किसी धर्मका भी माननेवाला क्यों न हो। इसके विरुद्ध जो चलेगा वह राजाकी अकृपाका पात्र होकर राजदंडका भागी होगा।

एक दिन राजा राजमहलपर बैठे बैठे प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे। इतनेमें एक बहुत बड़े बादलका अपने आप सुन्दर बनाव बन कर उनके देखते देखते नष्ट हो गया। यह देख उन्हें संसारकी भी यही लीला जान पड़ी। वे उसी समय अपने पुत्रको राज्यभार सौंप कर वनके लिए रवाना हो गए और जिनदीक्षा स्वीकार कर तपश्चर्या करने लगे।

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती
पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

हिन्दी—पद्यानुवाद।

फूले हुए कनकके नव पद्मकेसे,
शोभायमान नखकी किरणप्रभासे—
तूने जहाँ पग धरे अपने विभो! हैं,
नीके वहाँ विबुध पङ्कज कल्पते हैं॥

हे जिनेन्द्र! सोनेके खिले हुए नवीन कमलोंके समान कान्तिको धारण करनेवाले और चारों ओर फैली हुई नखोंकी किरणोंसे सुन्दर चरणोंको आप जहाँ रखते हैं वहीं स्वर्गके देव उनके नीचे कमलोंकी रचना करते हैं।

कामलताकी कथा।

जिनकी गर्दन टेढ़ी हो, जो कुबड़े हों, वे इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करके सुन्दर हो सकते हैं। इसका फल जिसे प्राप्त हुआ उसकी कथा नीचे लिखी जाती है:—

पटनामें धात्रीवाहन नामके राजा हो चुके हैं। वे बड़े नीतिज्ञ थे। प्रजा उन्हें बहुत चाहती थी। वे भी प्रजाका अपनी संतानकी भाँति पालन करते थे। उनकी रानीका नाम धात्रसेना था। उनके सात कन्याएँ थीं, तब भी उनकी बड़ी इच्छा थी कि एक कन्या और हो जाय। जन प्रायः नई बातकी ही इच्छा करते हैं। महारानीकी इच्छा थी कि इस पुत्रीका भी मैं बड़े ठाट-बाटसे विवाह करूँगी। उसके ब्याहमें बड़े बड़े राजे महाराजे आवेंगे। उससे मेरे राज्यकी बहुत प्रशंसा होगी।

भाग्यसे अबकी बार भी उनके पुत्री हो गई। सबको बड़ी खुशी हुई। खूब आनंद-उत्सव मनाया गया। गरीबोंको दान दिया गया। मनचाही वस्तुके प्राप्त होनेपर किसे प्रसन्नता नहीं होती।

राजकुमारी बड़ी सुन्दरी हुई। उसकी सुन्दरताको देख कर देवकुमारियाँ भी लज्जित होती थीं। जैसे जैसे उसकी उमर बढ़ती गई वैसे

वैसे सुन्दरता भी खूब बढ़ती गई। उसकी सुन्दरताको दिन-दूनी और रात-चौगुनी उन्नति करते देख कर ईर्षालु गुणोंसे उसका अभ्युदय–उत्कर्ष नहीं सहा गया। इसलिए वे भी खूब तेजीके साथ कुमारी पर अपना अधिकार जमाने लगे। मतलब यह कि राजकुमारी थोड़ी ही उमरमें त्रिभुवन-सुन्दरी और बड़ी विदुषी कहलाने लग गई। उसका नाम कामलता रक्खा गया। अपने नामको वह सचमुच सार्थक करती थी।

एक दिन राजकुमारी कामलता अपनी सखियोंके साथ पालखीमें बैठ कर कहीं जा रही थी। रास्तेमें उसे एक जिनमन्दिर पड़ा। वह बहुत ही सुन्दर और विचित्र कारीगिरीसे बनाया गया था। जो उसके नीचे होकर निकलता था; वह फिर उसे बिना देखे कभी आगे नहीं बढ़ सकता था। चाहे वह फिर जिनधर्मका द्वेषी ही क्यों न होता। उसकी सुन्दरता ही इस तरहकी थी जो सबके मनको मोह लेती थी। तब राजकुमारी भी उसे बिना देखे आगे कैसे बढ़ सकती थी। वह जिनधर्मसे द्वेष रखती थी तब भी मन्दिर देखनेको गई। मन्दिर देख कर उसे बहुत प्रसन्नता हुई। इसके बाद ज्यों ही उसकी नजर जिनप्रतिमा पर पड़ी त्यों ही वह नाक-भौं सिकोड़ कर अपने सखियोंसे बोली–सहेलियो! यह तो नंगे देवकी मूर्ति है। भला, जब स्वयं ही यह नंगी है तब अपने भक्तोंको क्या देती होगी? वे लोग बड़े मूर्ख हैं जो ऐसोंकी अपनी मनचाही वस्तुकी प्राप्तिके लिए पूजा करते हैं। जिसके पास स्वयं भूषण नहीं, राज्य-विभव नहीं, धन नहीं, वह अपने भक्तोंको राज्य आदि कैसे दे सकेगी? मुझे इसका बड़ा आश्चर्य है। तब भी लोग इसे ही पूजते हैं। जिसकी पूजासे एक बारका भोजन मिलना कठिन है उससे धन आदिकी तथा इस अपार संसारसे उद्धार पानेकी

आशा करना केवल मूर्खता है । मैं तो इसका देखना भी पसन्द नहीं करती । यह कहकर कामलता मन्दिरके बाहर मंडपमें आ खड़ी हुई।

वहाँ एक शीलभूषण नामके मुनि बैठे थे । कामलता मुनिकी ओर इशारा करके बोली—सखी ! देख मुझे इस नंगेमें मनुष्यत्वका कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता । यह पढा लिखा कुछ नहीं है । केवल पेट भरनेके लिए यहाँ आकर बैठ गया है । देख इसका पेट पातालमें बैठा जा रहा है। बेचारा भूखके मारे मर रहा है । ये लोग मूर्ख श्रावक और श्राविकाओंको ही आनन्दके कारण हैं—वे ही इन्हें देख कर बहुत प्रसन्न होते हैं । और कोई तो इन्हें कौड़ीके मोल भी नहीं पूछता । यदि यह नग्नाटक—दिगम्बर मुनि नहीं हुआ तो मैं इसे बातकी बातमें शास्त्रार्थमें पराजित कर निरुत्तर कर दूँगी । इस प्रकार बहुत कुछ निन्दा करके कामलता बाहर आ गई और अपने मुँहको विकृत बना कर तालियाँ बजाने लगी ।

उस समय कामलता गर्भिणी थी । जिन-निन्दा-जनित महापाप उसके उसी समय उदय आ गया । देखते देखते उसकी आँखें बैठ गईं। उसके दाँतोंमें बेहद कष्ट होने लगा । उसके मुँह और पाँव पाले पड़ गए । उसका रूप एक साथ डरावना-सा हो गया। वह कुबड़ी हो गई। उसे कुछ सुनाई न पड़ने लगा । उसके लिए अब यहाँसे महल तक जाना भी कठिन हो गया। उसके पाँव इधर उधर पड़ने लगे। आखिर वह गिर पड़ी । उसकी यह हालत देख कर सखियोंको बड़ी चिन्ता हुई । वे उसे पालखीमें बैठाकर राजमहल ले गईं ।

राजमहलमें पहुँचते ही हाहाकार मच गया । उसके माता-पिता रोने-चिल्लाने लगे । बहुतसे वैद्य, मांत्रिक, तांत्रिक बुलवाए गए। खूब

उपचार किया गया; पर किसीसे राजकुमारीको आराम नहीं पहुँचा। वहीं कोई एक जैनी खड़ा हुआ था। उसने पूछा—अच्छा महाराज! यह तो बतलाइए कि कुमारी गई कहाँ थी? कुमारीकी एक सखीने कहा कि हम सब गई तो कहीं नहीं थीं; पर मार्गमें एक जिनमन्दिरको देखकर अवश्य आई हैं। वहीं पर इसकी यह दशा हो गई। उस जैनीने फिर पूछा कि इसने वहाँ कुछ बुराई—जिनभगवानकी निन्दा वगैरह तो नहीं की थी? क्योंकि जिन्हें जिनधर्म पर विश्वास नहीं होता वे प्रायः जिनप्रतिमा, जिनमुनि आदिके बाह्य चिह्नको देख कर उनकी निन्दा कर बैठते हैं। उसकी सखी स्पष्ट बातके बतानेमें पहले तो जरा हिचकी। पर फिर बातको दबा देनेसे विशेष लाभ न समझ उसने स्पष्ट कह दिया कि इसने जिनप्रतिमा तथा मुनिकी निंदा तो अवश्य की है। सुन कर उस जैनीने कहा—बस तो यह सब उसी निंदाका फल है। नहीं तो एकदम यह ऐसी कैसे हो जाती। तब राजाने कहा—जो होना था वह तो हो गया। अब बतलाओ कि क्या करना चाहिए? इस पर श्रावकने कहा—राजकुमारीको पीछी मुनिराजके पास लिवा ले जा कर जिनदेव तथा मुनिराजकी पूजन करवाइए और मुनिराजसे अपराध क्षमा करा कर उनसे इसका उपाय पूछिए। फिर वे जो कहें वैसा ही कीजिए।

इसके बाद महाराज उसी समय राजकुमारीको जिनमन्दिर ले गये। वहाँ उन्होंने उसके साथ साथ जिनभगवानकी पूजा की, पंचामृताभिषेक किया, गरीबोंको दान दिया, अनाथोंकी सहायता की। इसके बाद वे मुनिराजके पास गये और उन्हें प्रणाम कर बोले—भगवन्! इस बालिकाकी रक्षा कीजिए। इसने बिना समझे-बूझे आप

सरीखे महात्माओंकी निन्दा की, उससे इसकी यह दशा हो गई। आप दयासागर हैं। इस बालिका पर क्षमा करके इसे बचाइए। आपका प्रेम जीव-मात्र पर समान है। इसलिए इसके अज्ञान पर ध्यान न देकर हमारे दुःखकी ओर देखिए। कोई ऐसा उपाय बतलाइए, जिससे इसे आराम हो जाय। क्योंकि महात्मा पुरुषोंका अभयदान संसारमें प्रसिद्ध है।

मुनिने कहा—राजन्! जो जैसा कर्म करता है उसका वैसा फल उसे भोगना ही पड़ता है। उसे इन्द्र, नरेन्द्र, जिनदेव आदि कोई नहीं मेट सकते। पर हाँ, धर्मसेवनसे पाप नष्ट होकर पुण्य-बन्ध होता है। इसलिए धर्म ग्रहण करना जीवमात्रके लिए आवश्यक है। यह कह कर मुनिराजने उन्हें श्रावक-धर्मका उपदेश दिया।

मुनिराजके उपदेशको सुन कर राजा बहुत खुश हुए। उन्होंने स्वयं श्रावक-धर्म स्वीकार कर कामलतासे भी उसके ग्रहण करनेको कहा।

इसके बाद मुनिराजने "**उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकान्ती**" इस श्लोकके मंत्र द्वारा जल मंत्र कर राजकुमारी पर छींटा। उनके जल छींटनेके साथ ही कामलताकी सब व्याधि चली गई। वह पहलेकी भाँति निरोग हो गई। यह देख वह मुनिराजके पाँवोंमें गिर कर बार बार अपना अपराध क्षमा कराने लगी। सच है, जब मनुष्य अपने अपराधको अपराध समझता है तब उसे बड़ा पश्चात्ताप होने लगता है। यही हालत राजकुमारी कामलताकी हुई।

इसके बाद कामलता और उसकी सखियोंने शुद्ध सम्यग्दर्शन, जो कि संसारके दुःखोंका समूल नाश करनेवाला है, ग्रहण किया। जिनधर्मके ऐसे प्रभावको देख कर अन्य बहुतसे लोगोंने भी जिनधर्म स्वीकार किया। धर्मकी भी बहुत प्रभावना हुई।

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ॥ ३७ ॥

हिन्दी–पद्यानुवाद ।

तेरी विभूति इस भाँति विभो ! हुई जो,
सो धर्मके कथनमें न हुई किसीकी ।
होते प्रकाशित, परन्तु तमिस्त्र–हर्ता
होता न तेज रवि–तुल्य कहीं ग्रहोंका ॥

हे जिनेन्द्र ! धर्मोपदेशके समय जैसी आपकी विभूति हुई थी वैसी अन्य देवोंमेंसे किसीकी नहीं हुई । सच है–गाढ़ान्धकारको नाश करनेवाली जैसी सूर्यकी प्रभा होती है, वैसी प्रभा प्रकाशमान नक्षत्रोंकी नहीं होती ।

जिनदासकी कथा ।

इस श्लोकके मंत्रकी आराधनासे धनका लाभ होता है । उसकी कथा इस प्रकार है:—

श्रीपुर नामका एक बहुत ही रमणीय नगर है । उसमें जिनदास नाम एक दरिद्री रहता था । पापके उदयसे उसके पासकी सब सम्पत्ति नष्ट हो गई । एक दिन जिनदास छहकायके जीवोंकी रक्षा करनेवाले अभयचंद्र मुनिकी वन्दनाके लिए गया । बहुत श्रद्धा–भक्तिके साथ मुनिको नमस्कार कर वह धर्मोपदेश सुननेके लिए वहाँ बैठ गया । मुनिराजने उसे सुखके कारण गृहस्थ–धर्मका उपदेश दिया । जिनदास उपदेश सुन कर बहुत प्रसन्न हुआ । उसने अपनी शक्तिके अनुसार व्रत भी ग्रहण किए ।

इसके बाद जिनदासने हाथ जोड़ कर मुनिसे कहा–प्रभो ! कर्मोंका

मुझ पर बड़ा प्रकोप है। वे मेरी दिन पर दिन दशा बिगाड़ रहे हैं। मैं एक अच्छा गृहस्थ था, पर पापी कर्मोंने मुझे इस दशामें पहुँचा दिया। महाराज! इस पापिनी दरिद्रताको दिन–रात मेरे पीछे पड़ी रहनेसे मैं बहुत दुखी हूँ। इसलिए दया करके कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिससे यह नष्ट हो जाय।

मुनिने कहा भाई न तो कोई किसीको धन दे सकता ह और न कोई किसीका धन हर ही सकता है। तब होता यह है कि जो जैसा कर्म करता है उसका उसे वैसा फल भी मिलता है। तुमने जन्मजन्मान्तरमें पाप किया होगा उसका तुम्हें भी यह फल मिला है। इसमें आश्चर्य कुछ नहीं है। हाँ इतना अवश्य है कि पुण्य पापका नाश करनेवाला है, इसलिए तुम भी जिनभगवानकी सदा पूजा–स्तुति कर पुण्यका बन्ध करो। अपने भावोंको बुरी ओर न जाने देकर पवित्र रक्खो, सब जीवों पर दया करो, परोपकार करो, अपनेसे बन सके उतनी तन-मन-धनसे दूसरोंकी सहायता करो। ये ही सब पुण्यके कारण हैं।

इसके अतिरिक्त मैं तुम्हें एक मंत्र सिखलाए देता हूँ, उसे सदा जपते रहना। यह कह कर मुनिराजने "**इत्थं यथा तव विभूति-रभूज्जिनेन्द्र**" इस श्लोकका मंत्र और साधन-विधि बतला दी। इससे जिनदास बहुत प्रसन्न हुआ। सच है–धनप्राप्तिके उपदेशसे किसे प्रसन्नता नहीं होती?

एक दिन मंत्रके प्रभावसे देवी जिनदासको एक अमोल रत्न देकर बोली—"इस रत्नके प्रभावसे तुम्हारे शत्रु नष्ट होंगे और धनकी प्राप्ति होगी।" इतना कह कर देवी चली गई।

एक दिन जिनदास कहीं बाहर गया हुआ था। रास्तेमें उसे चोर मिल गए। रत्नके प्रभावसे उसने उन्हें बाँध लाकर राजाके सुपुर्द कर दिया। यह देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ। सच है, मणि-मंत्र-औषधिका कितना प्रभाव है इसे कोई नहीं बतला सकता। यह देख राजाका जिनदास पर इतना प्रेम हो गया कि उसने उसे अपना मंत्री बना लिया और उसका हाल जान कर स्वयं भी जैनी बन गया। बड़ोंकी संगतिसे किसे धर्मकी प्राप्ति नहीं होती। अब जिनदासकी दशा बहुत सुधर गई। उसे धन भी मिल गया और राजसम्मान भी उसका खूब हुआ। अबसे वह सारे नगरका एक प्रधान प्रतिनिधि गिना जाने लगा। इसके बाद उसने कई विशाल जिनमन्दिर बनवाए, उनकी बड़े ठाट-बाटसे प्रतिष्ठा करवाई, दीन-दुखियोंकी सहायता की, उन्हें दान दिया, और खूब उत्सव किया। देखो, जो पहले एक महा दरिद्र था, वही धर्म और जिनभक्तिके प्रभावसे कितना उन्नत हो गया। इसलिए भव्य पुरुषोंको सदा धर्म-पालन और जिन भगवानकी भक्ति करना उचित है। क्योंकि जो भक्ति संसारके दुखोंका नाश करती है। उसके द्वारा साधारण राज्य-विभूतिका मिलना तो कुछ कठिन ही नहीं है।

श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

दोनों कपोल झरते मदसे सने हैं,
गुंजार खूब करती मधुपावली है;

ऐसा प्रमत्त गज होकर क्रुद्ध आवे;
पावें न किन्तु भय आश्रित लोक तेरे॥

नाथ! आपके आश्रित जन उस उद्धत हाथीको सामने आता हुआ देख कर जरा भी भयभीत नहीं होते जिसका कि क्रोध, मद झरते हुए कपोलों पर मत्त भौरोंके गूँजते रहनेके कारण अत्यंत ही बढ़ रहा है। अर्थात् आपके आश्रित जन भयंकर संकटके समयमें भी निर्भय ही रहते हैं।

सोमराजकी कथा।

उक्त पद्यके मंत्रकी जो आराधना करते हैं, उन्हें फिर हाथी सरीखे भयंकर प्राणियोंसे भी कुछ भय नहीं रहता। इसकी कथा नीचे लिखी जाती है।

पटनामें सोमराज नामका एक राजपुत्र रहता था। पापके प्रबल उदयसे न तो उसके वंशमें कोई जीता बचा था और न राजसम्पत्ति ही बची थी। वह दरिद्री होकर बहुत दुःख पा रहा था।

एक दिन उसे वर्द्धमान मुनिके दर्शन हुए। मुनिने उसे विधिपूर्वक भक्तामर और उसके मंत्रोंकी आराधना सिखला दी। वह बहुत श्रद्धा भक्तिके साथ भक्तामरकी साधना करने लगा।

एक दिन उसने सोचा, मुझे ऐसी स्थितिमें यहाँ रहना उचित नहीं। कारण, भाई-बन्धु मुझे निरुद्यमी देख कर जला करते हैं और ताना मारा करते हैं। इस दुःखसे मर-मिटना कहीं अच्छा, पर ऐसे लोगोंके यहाँ रहना अच्छा नहीं। इस विचारके साथ ही वह विदेशके लिए रवाना हो गया।

घूमता-फिरता वह हस्तिनापुर पहुँचा। संयोग वश वहाँके राजाका पट्टहाथी साँकल तुड़ा कर भाग छूटा था; और उन्मत्त होकर लोगोंको मारता हुआ उनके घरोंको गिराता फिरता था। उसके भयसे सारा नगर त्रस्त हो उठा। राजाने उसके पकड़वानेका बहुत प्रयत्न किया;

पर लाभ कुछ नहीं हुआ। जब बड़े बड़े शूरवीर उसे न पकड़ सके -उससे हार मान गये-तब राजाने नगरमें मनादी पिटवाई कि " जो वीर इस उन्मत्त हाथीको वश करेगा उसे मैं अपने राज्यका चतुर्थांश देनेके साथ साथ अपनी गुणवती नामकी कन्या भी विवाह दूँगा।"

इसी समय सोमराज इधर ही होकर जा रहा था। मनादी सुन कर उसने निश्चय किया कि जो हो एक बार इस हाथीको मैं अवश्य वश करूँगा। इसके बाद वह " **श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-**" आदि श्लोकके मंत्रकी आराधना कर उस हाथीको पकड़ने चला। हाथीके पास पहुँच कर उसने बातकी बातमें उसे पकड़ कर अपने वश कर लिया। उसके पराक्रमको देख कर सब लोग बड़े खुश हुए। इसके बाद उसने हाथीको राजाके सामने लाकर खड़ा कर दिया। राजा अपनी प्रजाकी रक्षा करनेवाले सोमराज पर प्रसन्न तो बहुत हुआ, पर उसके साथ बात-चीत करनेसे राजाको जान पड़ा कि वह विदेशी है। तब उसे बड़ी चिन्ता हो गई। राजाने सोचा कि इस विदेशीको, जिसके कि कुलस्वभावका कुछ ठिकाना नहीं, अपनी पुत्री मैं कैसे देदूँ? यह तो उचित नहीं है। परन्तु एक बात है। वह यह कि धनसे स्त्री मिल सकती है, धनसे राज्य-सम्मान होता है और धनहीसे सब आनन्द मिलता है; इसलिए इसे खूब धन देकर बिदा कर देना अच्छा है।

राजा तो इधर यह विचार कर रहा था और उधर राजकुमारी गुणवती सोमराजको अपने महलके झरोखोंमेंसे देख कर उस पर मोहित हो गई। क्योंकि सोमराजकी सुन्दरता कामदेवसे भी बढ़कर थी। ऐसी हालतमें राजकुमारीका उस पर मोहित हो जाना कोई आश्चर्यकी

बात न थी। जिस दिनसे राजपुत्रीने सोमराजको देखा उसी दिनसे उसकी हालत बहुत ही बिगड़ चली। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। उसका मन किसी प्रकारके विनोदमें न लगता था और न भूषण वस्त्रोंके पहरनेमें लगता था। यह देख कर राजाको बड़ी चिन्ता हुई। उसने वैद्यों, मांत्रिकों और तांत्रिकों द्वारा उसका बहुत कुछ इलाज करवाया, पर उसे किसीसे आराम नहीं पहुँचा। सच है, जिनके मनको काम अधीर बना डालता है उन्हें तब तक चैन नहीं पड़ता जब तक कि उन्हें अपनी प्यारी वस्तु प्राप्त न हो—वही उनके कठिन काम-रोगकी औषधि है।

सब तरहसे निराश होकर राजाने फिर नगरमें मनादी पिटबाई कि "जो मेरी कन्याको आराम कर देगा उसे अपने राज्यका चतुर्थांश दूँगा और उसके साथ अपनी पुत्रीको भी विवाह दूँगा।" मनादी सुन कर सोमराज उसी समय राजमहल पहुँचा। राजकुमारीको काम बाणोंसे जर्जरित समझ उसने झूठ-मूठ ही मंत्रके बहाने एक साथिया लिख कर उस पर उसे बैठा दिया और मंत्रे हुए उड़द खिलाने लगा। इसके सिवाय मंत्र सुनानेके बहाने सोमराजने राजकुमारीके कानमें कुछ संकेत भी किया। संकेतको सुनते ही राजकुमारी झटसे सावधान होकर उसी भाँति उठ बैठी, जिस भाँति सर्पका काटा हुआ मंत्रके बलसे जहर उतर जाने पर सचेत हो उठ बैठता है। यह देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसी समय उसने कुमारीका ब्याह सोमराजके साथ करके अपने बचनोंके अनुसार उसे राज्य भी दे दिया।

देखिए, कहाँ तो सोमराजकी दरिद्र दशा! कहाँ विदेशमें घूमते फिरना और कहाँ भाग्योदयसे राज्य-वैभवका प्राप्त होना! पर बात

यह है कि जब जीवोंके पुण्यका उदय आता है तब उनके लिए कोई बात कठिन नहीं रहती।

सोमराजको फिरसे राज्य मिल गया। उसने मुनिके उपदेशको याद कर धर्म पर अपनी श्रद्धाको अटल किया और खूब दान-धर्म द्वारा पुण्य उपार्जन किया।

यह सब धर्मका प्रभाव है। इसलिए जो सुखकी इच्छा करते हैं उन्हें सदा धर्मका पालन करना चाहिए।

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥ ३९ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

नाना करीन्द्रदल-कुंभ विदारके की-
पृथ्वी सुरम्य जिसने गजमोतियोंसे;
ऐसा मृगेन्द्र तक चोट करे न उसपै
तेरे पदाद्रि जिसका शुभ आसरा है॥

प्रभो! जिसने हाथियोंके गण्डस्थलोंको विदीर्ण कर उनसे निकले हुए उज्ज्वल, पर खूनसे भरे हुए-मोतियोंसे पृथ्वीकी शोभाको बढ़ाया और जो अपने शिकार पर छलांग मारनेको तैयार खड़ा है वह सिंह भी, आपके चरण-पर्वताश्रित जनों पर-जो दुर्भाग्यसे सिंहके पाँवोंमें भी आ गिरे हों, आक्रमण नहीं कर सकता।

देवराजकी कथा।

इस पद्यकी जो भव्य पुरुष शुद्ध भावोंसे श्रद्धा-पूर्वक आराधना करते हैं उनका भयंकर सिंह भी कुछ नहीं कर पाता। कथा इस प्रकार है:-

श्रीपुर नामका एक अच्छा समृद्धिशाली नगर था। उसमें देवराज नामका एक सेठ रहता था। उसने विद्वानोंके चूडामणि, अपने वीर-चंद्र गुरुके पास विधि-पूर्वक भक्तामर-स्तोत्र और उसकी साधन-विधिका अभ्यास किया था।

एक दिन देवराज व्यापारकी इच्छासे कुछ लोगोंके साथ संकेतपुर गया। रास्तेमें एक जंगलमें दिन अस्त हो गया। वह जंगल बड़ा भयंकर और हिंस्र जीवोंसे भरा हुआ था। वे लोग उसमें ठहर तो गए, पर उन भयंकर जीवोंके मारे उनके होश ढीले पड़ गए। इतनेमें उनके सिर पर एक और विपत्ति आकर उपस्थित हो गई। एक बड़ा भारी भयंकर सिंह अपनी विकट गर्जनासे हाथियोंके हृदयोंको हिलाता हुआ और उनके विदीर्ण कपोलोंसे बहते हुए खूनसे लथ-पथ भरा हुआ उन पर झपटा। उसे देख कर देवराजके सब साथी अधमरेकी भाँति हो गये और चीख मार कर वे देवराजके पीछे आ खड़े हुए। उस बेचारेको उन्होंने सिंहके सामने कर दिया। सच है, मृत्यु सबके लिए असह्य होती है।

अपने सामने कालको मुहँ बाए हुए आया देख कर देवराज भी बहुत घबरा उठा, पर उस समय उसे अपने गुरुका सिखाया हुआ मंत्र और उसकी आराधना करनेकी बात याद हो उठी। उसने उसी समय " **भिन्नेभकुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-** " इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करके मंत्र-प्रभावसे सिंहको अपने वश कर लिया; जिस भाँति योगिराज प्रचण्ड कामको अपने वश कर लेते हैं। इसके बाद सिंहको विनयसे मस्तक झुकाए, और नखोंसे गिरे हुए सुन्दर मोतियोंसे मानों पूजन करते देख कर देवराजने उससे कहा-भव्य! तुझे जीवोंकी हिंसा करते बहुत समय हो गया, अब तो अपने कल्या-

णके लिए इस घोर पापको छोड़ कर दया धारण कर। देख, हिंसाका फल बहुत बुरा और नरकमें लेजानेवाला है। वहाँ अनन्त दुःख हैं। इसलिए यदि तुझे दुःखोंका डर है और सुखी होनेकी तेरी इच्छा है, तो इस पापके छोड़नेके साथ सम्यग्दर्शन ग्रहण कर। उससे तुझे सुख, शान्ति मिलेगी। देवराजके उपदेशका सिंह पर बहुत प्रभाव पड़ा। उसने हिंसा छोड़ कर दयाधर्म स्वीकार कर लिया।

इसके बाद देवराज और उसके साथी उस वनसे निकल संकेतपुर पहुँचे। वहाँ बहुत धन कमा कर वे बड़े आनन्दके साथ पीछे अपने नगरमें लौट आए। रास्तेकी घटनासे देवराजकी श्रीपुरमें बहुत मान्यता हो गई। अबसे सारे नगरके सेठ-साहूकारोंमें वही प्रधान गिना जाने लगा। राजसभामें भी उसका खूब सत्कार होने लगा। सच है, पुण्यसे धन-दौलत भी प्राप्त होती है और सन्मान भी होने लगता है।

इसके बाद देवराजने अपने नगरमें बड़े बड़े विशाल जिनमन्दिर बनवाए, उनकी प्रतिष्ठा करवाई, विद्यालय खुलवाए, और गरीबोंकी सहायता की। इससे उसका नाम खूब प्रसिद्ध हो गया और वह संघाधिपति कहलाने लगा।

कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम्॥ ४०॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

झालें उठें, चहुँ उड़ें जलते अँगारे,
दावाग्नि जो प्रलय वह्नि समान भासे;

संसार भस्म करने हित पास आवे,
त्वत्कीर्तिगान शुभ वारि उसे शमावे ॥

नाथ ! प्रलयकालकी वायुसे बढ़ी हुई अग्निके सदृश, धधकते हुए, उज्ज्वल और जिसमें चिनगारियाँ निकल रही हैं, तथा संसारको भस्म कर देनेके लिए सम्मुख आते हुएकी भाँति जान पड़नेवाले, ऐसे भयंकर दावानलको भी आपका नामरूपी जल शान्त कर देता है—बुझा डालता है ।

लक्ष्मीधरकी कथा ।

उक्त पद्यके मंत्रकी पवित्र भावोंसे आराधना करनेसे दावानल भी जलके रूपमें परिणत हो जाता है । इसकी कथा इस प्रकार है:—

पूर्व दिशामें पैठणपुर नामका एक नगर था । उसमें एक लक्ष्मीधर नामका वैश्य रहता था । वह बड़ा धनी था । उसकी धर्म पर बहुत श्रद्धा थी । इसलिए वह सदा भक्तामर-स्तोत्रका पाठ किया करता था और मंत्र भी जपा करता था ।

एक दिन वह धन कमानेकी इच्छासे ऊँट तथा बैलों पर खूब धन लाद कर अपने कुछ साथियोंके साथ विदेश गया । सच है, बनियोंकी जाति ही ऐसी है जो पास खूब धनके होने पर भी वह अपने लोभको दबा नहीं सकती ।

ये लोग चलते चलते एक घोर जंगलमें पहुँचे । उनके चारों ओर इतना जंगल था कि मीलों तक उससे बाहर निकलनेका पता नहीं पड़ता था । ये उसके बीचमें पहुँचे होंगे कि वायुका प्रचण्ड वेग चला । उसने बढ़ते बढ़ते इतनी भयंकरता धारण की कि इनका वहाँ ठहरना अत्यन्त कठिन हो गया । इतनेमें वृक्षोंकी परस्पर रगड़से उसमें आग लग उठी । बेचारोंका एक आपत्तिसे छुटकारा नहीं हुआ कि यह दूसरी बला एक और उनके सिर पर आ खड़ी हुई । अग्निका लगना था कि साथ ही हवाने उसे और सहायता दी । फिर क्या था ? बातकी

बातमें अग्नि सर्वंकषा हो उठी। यह देख उन सबकी जानें मुट्ठीमें आ गईं। बेचारे घबरा कर किं-कर्त्तव्यमूढ हो गए। उन्हें कुछ नहीं सूझ पड़ा।

उन्होंने अपनी रक्षाके लिए बहुत प्रयत्न किया, पर एकमें भी वे सफल नहीं हुए। आखिर वे जीवनकी आशा बिलकुल छोड़ बैठे। इसी समय लक्ष्मीधरको अपने सिद्ध किए मंत्रकी याद आ गई। उसका चेहरा एक साथ आशारूपी जलको पाकर खिल उठा। वह क्षण-मात्र भी विलम्ब न कर भक्तामरके **"कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं"** इस श्लोकके मंत्रकी आराधना करने लगा। मंत्रके प्रभावसे चक्रेश्वरी एक युवतीके वेशमें वहाँ आई और लक्ष्मीधरको एक जलभरा पात्र दे-कर वहाँसे चल दी। लक्ष्मीधरने वह जल अग्नि पर छींटा। उसका जल छींटना था कि अग्नि बातकी बातमें शान्त हो गई; जिस भाँति जिन भगवानके वचनामृतसे संसारका प्रबल संताप नष्ट हो जाता है।

इसके बाद वे लोग कुशल-पूर्वक उस घोर जंगलसे निकल कर अपने इच्छित स्थान पर पहुँच गए। वहाँ रह कर उन्होंने बहुत धन कमाया और बाद आनन्द-उत्सवके साथ वे सब अपने अपने मकान पर लौट आए। लक्ष्मीधर पहलेहीसे बहुत श्रद्धालु था, पर अपने पर बीती हुई घटनासे उसका श्रद्धान और भी दृढ़ हो गया। अब वह बहुत सुखसे रहने लगा और अपने मंत्रका उपयोग सदा धर्म-प्रभावना तथा संसारके जीवोंका उपकार करनेमें करने लगा—उन्हें पवित्र धर्मके सन्मुख कर उनका मिथ्यात्व नष्ट करने लगा। परोपकारी और दयालु पुरुषोंका कर्त्तव्य प्रायः दूसरोंके भलेके लिए ही हुआ करता है।

रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।
आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-
स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥ ४१ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

रक्ताक्ष क्रुद्ध पिककंठ-समान काला,
फुंकार सर्प फणको कर उच्च धावे ।
निःशंक हो जन उसे पगसे उलाँघे,
त्वन्नाम-नागदमनी जिसके हिये हो ॥

नाथ ! जिस मनुष्यके हृदयमें आपकी नामरूपी नागदमनी—सर्पको निस्तेज करनेवाली औषधि है, वह मनुष्य, लाल लाल आँखें किए हुए, गर्विष्ठ कोकिलाके कण्ठ-समान काले, अत्यन्त क्रोधी, और काटनेके लिए संन्मुख आते हुए सर्पको भी निर्भय होकर पाँवों द्वारा लाँघ जाता है। अर्थात् जिस भाँति नागदमनीसे बड़े बड़े जहरीले सर्प निस्तेज हो जाते हैं उसी भाँति पवित्रता और श्रद्धासे आपका नाम-स्मरण करनेवालेको भी सर्पका बिल्कुल भय नहीं रहता।

दृढ़व्रताकी कथा ।

इस पद्यके मंत्रकी आराधनाके फलसे भयंकर सर्प भी एक कोमल फूलकी माला बन जाता है। इसकी कथा इस प्रकार है:—

नर्मदापुरमें एक महेभ नामका सेठ रहता था। उसके एक लड़की थी। उसका नाम दृढ़व्रता था। वह बड़ी सन्दरी और विदुषी थी। जैनधर्म पर उसकी अटल श्रद्धा थी। उसने श्रावकोंके व्रत ग्रहण कर रक्खे थे।

दशपुर नामका एक और नगर था। उसमें भी एक सेठ रहता था। उसका नाम कर्मण था। उसकी लोकमें बहुत प्रतिष्ठा थी और धन भी उसके पास अटूट था। वह शिवभक्त था।

दृढ़व्रताके पिताने कर्मणको एक प्रतिष्ठित धनी देख कर अपनी सुशीला लड़कीका ब्याह उसके साथ कर दिया। नव वधू अपनी सुसराल आई। यहाँ भी वह व्रत-उपवास करने लगी, जिनमन्दिर जाने लगी और जैनशास्त्रोंका स्वाध्याय-मनन-चिन्तवन करने लगी। उसे अपने धर्मके विरुद्ध देख कर उसकी सुसरालके सब लोग उससे द्वेष करने लगे, उसका बात बात पर तिरस्कार—अपमान करने लगे, उसे कुवचन कह कर और उसके सामने जिनधर्मकी निन्दा कर बेहद कष्ट देने लगे। बेचारी दृढ़व्रताने तब भी उनके विरुद्ध एक अक्षर भी मुँहसे नहीं निकाला। सच है, अधर्मी पुरुष बहुधा करके धर्मात्माओंसे द्वेष ही किया करते हैं। उनका ऐसा स्वभाव ही होता है। इतने पर भी उन पापियोंको सन्तोष नहीं हुआ जो उनने उसके पतिको भड़का कर—उसे भली-बुरी सुझा कर उसका फिर एक ब्याह करवा दिया।

दूसरी नव वधू आई। वह उन्हींके धर्मको पालनेवाली मिथ्यात्विनी और बड़ी चालाक थी। सो आते ही उसने जलती आगमें ऊपरसे और घीकी आहुति डालनेका काम किया। वह अपने स्वामीको सदा दृढ़व्रताके दोष दिखा कर उसकी निन्दा किया करती थी। एक दिन उसने अपने पतिसे कहा—नाथ! यह बड़ी पापिनी और अभिमानिनी है। देखिए, न तो यह हमारे देव-गुरुओंकी पूजा-भक्ति करती है, और उन्हें देख कर चुपचाप रह जाती हो सो भी नहीं; किन्तु बड़ी बुरी तरह उनकी निन्दा करती है, और नंगे देवों और गुरुओंकी, जिन्हें देख कर ही लज्जा आती है, पूजा करती है, स्तुति-वन्दना करती है। अपने चंद्रमाके समान निर्मल कुलमें यह बड़ी कुल-कलंकिनी आ गई है। और आप इसे कुछ नहीं कहते, इससे उसका अभिमान और

बढ़ा जा रहा है। मैं तो कभी ऐसी बातें नहीं सह सकती; पर आपके लिहाजसे मुझे अपने देव-गुरु-धर्मकी निन्दा भी सहन करनी पड़ती है।

कर्मणने अपनी नई स्त्रीके बहकानेमें आकर किसी छलसे दृढ़व्रताको मार डालनेका विचार किया। उसने उसका मन-ही-मन उपाय सोच एक गारुडीको बुला कर उसे खूब धन दिया और कहा कि एक बहुत ही जहरीला सर्प पकड़ कर मुझे ला दे। दवाके लिए उसकी जरूरत है। सर्प मँगा कर कर्मणने उसे अपने सोनेके स्थान पर घड़ेमें बन्द करके रख दिया।

रातके समय कर्मणने अपनी दोनों स्त्रियोंके साथ खूब विनोद-विलास किया, खूब हँसी-दिल्लगी की और जब सोनेका समय हुआ तब उसने दृढ़व्रतासे कहा—प्रिये! हाँ, मैं एक बात तो तुमसे कहना भूल ही गया। आज मैं तुम्हारे लिए एक बहुत ही सुन्दर फूलोंकी माला लाया हूँ। दृढ़व्रता यद्यपि अपनी सोतकी सब बातें जानती थी, पर तब भी वह बड़े उमँगके साथ बोली—प्राणनाथ! बतलाइए वह माला कहाँ रक्खी है? मैं अभी उसे लाकर पहनूँगी। मुझ अभागिनी पर आपकी आज जो कृपा हुई, उससे मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। उसका वर्णन तो ब्रह्मा भी नहीं कर सकता। यह कह कर वह अपने स्वामीके मुँहकी ओर बड़ी उत्कण्ठासे देखने लगी।

कर्मणने हाथसे घड़ेकी ओर इशारा करके कहा—देखो, उस घड़ेमें रक्खी है।

दृढ़व्रता "**रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं**" इस श्लोकका मंत्र जपती हुई निडर होकर बड़ी जल्दी दौड़ी गई और झटसे घड़ेमेंसे माला निकाल कर बड़ी खुशीके साथ हँसती हँसती

अपने स्वामीके पास आई। वास्तवमें सर्पको फूलोंकी मालाके रूपमें देख कर उन दोनों मायावियोंके आश्चर्यका कुछ ठिकाना न रहा। कर्मणने अपना भाव छिपा कर कहा—प्रिये! कहो तो कितनी सुन्दर माला है! अच्छा इसे तुम पहन कर देखो तो यह तुम्हें कैसी शोभा देती है! दृढ़व्रताने अपनी हँसीको दबा कर मालाको पहन लिया। इसके बाद अपने गलेमेंसे उसे निकाल कर वह अपने भोले स्वभावको लिए हुए कर्मणसे बोली—जीवन-सर्वस्व! आप भी तो इसे पहन देखिए। आपके गोरे गलेमें तो यह मुझसे भी कहीं अधिक शोभा देगी। यह कह कर दृढ़व्रता कर्मणके गलेमें उस मालाको डालनेहीवाली थी कि एक स्वर्गीय सुन्दरीने अचानक दृढ़व्रताका हाथ पकड़ कर कहा—पापियो! इस बेचारी सुशीला और सरल-हृदया धर्मनिष्ठ बालिका पर तुम लोग क्यों अत्याचार करते हो? तुम बड़े ही दुर्जन हो! अपना स्वभाव कैसे छोड़ोगे? पर याद रक्खो तुम्हारा सर्पका मँगाना और उसके द्वारा इसकी जान लेना आदि जितना कूट-कपट है, वह किसीसे छुपा हुआ नहीं है। तुम इसे कितनी ही तकलीफ पहुँचाओ; परंतु इसके पास एक ऐसी अमोल वस्तु है, जिससे इसकी कुछ हानि नहीं होगी; बल्कि तुम्हें ही अधिकाधिक कष्ट उठाना पड़ेगा। मैं इस समय तुम पर इस लिए दया करती हूँ कि इस बेचारी निर्दोष बालिकाकी जिन्दगी खराब न हो। अतएव तुम यदि अपनी और अपने सब कुटुम्बकी कुशल चाहते हो, तो इस सतीके पाँवोंमें पड़ कर अपने अपराधकी क्षमा कराओ और प्रतिज्ञा करो कि अब कभी तुम इसके साथ दुराचार—अन्याय नहीं करोगे। इतना कह कर देवी चल दी।

देवीके चले जाने पर वे दोनों दृढ़व्रताके पाँवों पर गिर कर गिड़गिड़ाने लगे। सती दृढ़व्रता, उन्हें झटसे उठा कर स्वयं उनका

विनय करने लगी। सच है, धर्मके प्रभावसे दुर्जन भी सज्जन हो जाते हैं और सरल-हृदय मनुष्य अपनेसे छोटे और अपराधीका भी विनय ही करता है।

धर्मपर निश्चल रहनेके कारण पतिकी अकृपा-पात्र दृढ़व्रता भी उसकी पूर्ण प्रेमपात्र बन गई। धर्म और जिन भगवानकी स्तुतिके प्रभावसे तो मनुष्य संसारमें पूजा जाने लगता है, तब दृढ़व्रता अपने स्वामीकी प्रेम-पात्र हो गई तो इसमें आश्चर्य क्या?

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति॥ ४२॥
कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते॥ ४३॥

हिन्दी—पद्यानुवाद।

घोड़े जहाँ हिनहिने, गरजे गजाली,
ऐसे महा प्रबल सैन्य धराधिपोंके—
जाते सभी बिखर हैं तव नाम गाए;
ज्यों अन्धकार, उगते रविके करोंसे॥
बर्छे लगे, बह रहे गज—रक्तके हैं
तालाबसे, विकल हैं तरणार्थ योद्धा,
जीते न जायँ रिपु, संगर बीच ऐसे
तेरे प्रभो! चरण—सेवक जीतते हैं॥

नाथ! जिस भाँति ऊगते हुए सूर्यकी किरणोंसे अन्धकार नष्ट हो जाता है उसी भाँति आपके नामका स्मरण करनेसे, उछलते हुए घोड़ोंकी हिनहिनाहट और हाथियोंकी चिंघाड़से भयंकर बलवान राजोंकी सेना भी युद्धभूमिसे भाग जाती है।

प्रभो! आपके चरणाश्रित जन दुर्जय शत्रुको पराजित कर उस भयंकर युद्धमें जयलाभ करते हैं जिसमें भालोंकी अणियोंसे विदीर्ण हुए हाथियोंके रक्तके प्रवाहको वेगसे पार करनेके लिए योद्धागण बड़े आतुर रहते हैं।

गुणवर्माकी कथा।

उक्त पद्योंकी जो भक्ति और पवित्रताके साथ आराधना करते हैं, वे युद्धमें जयलाभ करते हैं। उसकी कथा इस प्रकार है:—

मथुराके राजाका नाम रणकेतु था। वे बड़े बुद्धिमान, और पराक्रमी योद्धा थे। उनके छोटे भाईका नाम गुणवर्मा था। उनकी जिनधर्मपर बड़ी श्रद्धा थी। उनका नियम था कि वे निरंतर भगवानकी पूजा और भक्तामर-स्तोत्रकी आराधना कर भोजन करते थे। मंत्रके प्रभावसे उनका यश और नाम खूब फैल रहा था।

एक दिन रणकेतुकी स्त्रीने उनसे कहा—प्राणनाथ! आपके सुखी रहनेमें ही मेरा सुख है, इस कारण उचित न होने पर भी आपके सुखके लिए मुझे एक बात कहनी पड़ती है। उसमें मेरा अपराध हो तो क्षमा कीजिएगा।

बात यह है—"आपके भाई बड़े तेजस्वी हैं, भाग्यशाली हैं और गुणज्ञ भी हैं। सब राजे-महाराजे उन्हें ही पूछते हैं। आपकी तो उनके सामने कुछ भी नहीं चलती। इसका भविष्य मुझे यह जान पड़ता है कि कुछ दिनोंमें वे आपका राज्य छीन कर स्वयं उसके अधिकारी बन बैठेंगे। इसलिए इसकी चिन्ता अभीसे करनी उचित है।"

रणकेतुने अपनी स्त्रीके बहकानेमें आकर बेचारे निर्दोष भाईको देश निकाला दे दिया। गुणवर्मा मथुरासे चल कर ऐसे दूर स्थान पर चले गए, जहाँ उन्हें भाईका नाम ही सुनाई न पड़े। अब उन्हें किसी तरहके भयकी संभावना न रही। वे एक पर्वतकी गुफामें रह कर और पर्वतोंके पवित्र फल-फूल खाकर सुखसे जीवन बिताने लगे।

इसके कुछ समय बाद रणकेतु दिग्विजय करनेके लिए निकले। रास्तेमें वही पर्वत पड़ा जहाँ उनके भाई गुणवर्मा रहते थे। रणकेतुने उन्हें देख लिया। देख कर उन्होंने सोचा कि मेरे राज्यका पक्का दुश्मन तो यही है। समय पाकर यह न जाने क्या कर बैठेगा? इसलिए पहले इसे ही जड़मूलसे उखाड़ फेंक देना अच्छा है। और यह जगह भी ऐसी है कि यहाँ जो कुछ किया जायगा उसे कोई भी न जान पायगा। इसके साथ ही रणकेतुने अपनी सेनाको आज्ञा की कि—जाओ इस पर्वतकी गुफाको घेर कर उसे तोपोंसे उड़ादो। रणकेतुकी आज्ञा पाते ही सेनाने पर्वतको घेर कर धड़ाधड़ तोपें छोड़ना जारी कर दिया। गुणवर्मा शान्तिसे बैठे हुए थे। वे अचानक सुनसान पर्वतमें तोपोंकी आवाज सुन कर आश्चर्यमें आ गए। उन्होंने सोचा—संभव है शिकारी लोग शिकार करते होंगे। पर मेरे ऐसे पवित्र स्थानमें जीवोंकी हिंसा उचित नहीं। चल कर देखूँ कि क्या है? वे उठ कर गुफाके दरवाजे पर गए। इतनेमें उन्हें तोपकी भयंकर आवाजके साथ यह कोलाहल सुनाई दिया कि देखो, "गुफामेंसे शत्रु निकल कर भाग न जाय, उसे मारडालो।" गुणवर्मा तब समझे कि भाईको मेरा जीना ही बुरा जान पड़ता है। वे मुझे मार डालना चाहते हैं। अस्तु यदि उनकी ऐसी इच्छा है तो वे उसे पूरी करें। मुझे तो एक बार

मरना ही है । अच्छा है जो मेरी मृत्यु भाईको शान्ति उत्पन्न करके हो । यह कह कर वे भक्तामरकी आराधना करनेको बैठ गए । सब ओरसे अपने चित्तको खींच कर उन्होंने उसे परमात्माके ध्यानमें लगाया । उनकी दृढ़ताके प्रभावसे चक्रेश्वरी आई । उसने भयंकर उपद्रव दिखा कर रणकेतुकी सेनाको छिन्न-भिन्न कर दिया और वहाँ गाढ़ा अँधेरा कर दिया । रणकेतुकी सेनाको जिधर रास्ता मिला उधर ही वह भाग खड़ी हुई । अपनी सेनाकी इस प्रकार दुर्दशा देख कर रणकेतु बहुत लज्जित हुआ । अकेले गुणवर्मा द्वारा अपनी सेनाकी इतनी दुर्दशा देख कर रणकेतुने समझा कि अवश्य उसके पास कोई दैवी-बल है । जब वह जंगलमें रह कर भी इतना शक्तिशाली है तब धिक्कार है मेरे राज्यको जो जरासे लोभके लिए मैं अपने भाईकी जान लेनेके लिए उतारू हो गया ! मुझ पापी दुरात्माको हजार बार, अनन्त बार धिक्कार है ! अपनी नीचता पर बहुत पश्चात्ताप कर रणकेतु भाईके पास मिलनेको गया । दोनों भाई बड़े प्रेमसे मिले । रणकेतुने अपने अपराधकी भाईसे क्षमा कराई । इसके बाद वे अपना मुकुट गुणवर्माके सिर पर रख कर और उन्हें निष्कण्टक राज्य करनेके लिए आशीर्वाद देकर आप वनकी ओर चल दिए और एक परम तपस्वी दिगम्बर मुनिराजके पास जाकर उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण करली ।

गुणवर्माको अपने भाईके वियोगका बहुत दुःख हुआ । उनकी इच्छा नहीं थी कि वे राज्य करें; परंतु उस समय सारा राज्य अस्वामिक हो रहा था, इस कारण संभव था कोई शत्रु चढ़ कर उसे हड़प लेता । अतएव लाचार होकर उन्होंने राज्यभार अपनी भुजाओंपर उठाया और शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर वे निष्कण्टक राज्य करने लगे ।

ऋषियोंका यह पवित्र उपदेश बड़े ही महत्त्वका है कि "**चरतु सुखार्थी सदा धर्म**" अर्थात् सुख चाहनेवालोंको निरन्तर धर्मका पालन करना चाहिए । यह धर्मका ही प्रभाव था जो अपने आप गुणवर्माको राज्यकी प्राप्ति हो गई ।

अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरङ्गशिखरस्थितयानपात्रा-
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥४४॥

हिन्दी-पद्यानुवाद ।

हैं काल, नृत्य करते मकरादि जन्तु,
त्यों वाड़वाग्नि अति भीषण सिन्धुमें है,
तूफानमें पड़ गए जिनके जहाज,
वे भी प्रभो ! स्मरणसे तव पार होते ॥

नाथ ! जिसमें भयंकर पाठीन, पीठ आदि मगरमच्छ क्षुभित हो रहे हैं—मुहँ फाड़े हुए इधर उधर दौड़ रहे हैं, और विकराल वाड़वाग्नि प्रचण्डता धारण किए हुए है, उस समुद्रमें भी यात्री लोग, जिनके कि जहाज समुद्रकी अत्यन्त ऊँची उछलती हुई तरंगों द्वारा डँवाडोल हो उठते हैं, आपका स्मरण कर निर्भयताके साथ अपनी यात्रा पूरी करते हैं ।

महेभ सेठकी कथा ।

इस पद्यके मंत्रकी आराधनासे समुद्रयात्रा निर्विघ्न पूरी हो जाती है—मगरमच्छादि जल-जन्तुओंका कुछ भय नहीं रहता । इसकी कथा इस प्रकार है:—

तामली नामका एक बहुत रमणीय नगर है । उसका तामली नाम इसलिए हुआ कि उसमें तमाल—ताड़के झाड़ बहुत थे । उसमें महेभ नामका एक सेठ रहता था । उसने अपने विद्वान् गुरु चंद्रकीर्ति

मुनिसे भक्तामरस्तोत्र सीखा था। साथमें उसके मंत्रोंकी आराधना करना भी गुरुने उसे बतला दिया था।

उसके पास बहुत धन होने पर भी उसने सोचा किः—

स्वापतेयमनायं चेत्सव्ययं व्येति भूर्यपि।
सवदा भुज्यमानो हि पर्वतोपि परिक्षयी॥

बहुत धन होने पर भी आमदनी न हो और खर्च बराबर जारी रहे, तो वह एक न एक दिन अवश्य नष्ट हो जाता है। विशाल पर्वतको थोड़ा थोड़ा भी प्रतिदिन खोदते रहनेसे एक न एक दिन उसका अंत आ ही जाता है। अतः धनके बढ़ानेका अवश्य यत्न करना चाहिए। यह विचार कर वह धन कमानेकी इच्छासे मणि-माणिक आदि रत्नोंसे परिपूर्ण सिंहलद्वीपमें पहुँचा। वहाँ उसने बहुत धन कमाया। उसे वहाँ रहते रहते बहुत दिन बीत गए। एक बार उसकी इच्छा अपने देशमें लौट आनेकी हुई। वह अपना सब धन नाव पर लाद कर वहाँसे चला। रास्तेमें एक जगह नाव अटक गई। वह किसी देवीका स्थान था। नावको अटकी देख कर माँझीने कहा—सेठ साहब! यहाँ एक देवी रहती है। उसने नाव अटका दी है। वह पशुकी बलि चाहती है। महेभ जिनधर्मका भक्त था। अतः वह जीवकी बलि कैसे दे सकता था। उसने नाव चलानेके लिए बहुत प्रयत्न किया, पर वह तिलभर भी अपने स्थानसे नहीं टसी। तब उसने भक्तामर-स्तोत्रका जपना शुरू किया। उसके प्रभावसे उस समुद्राधिवासिनी विकटाक्षी देवीकी सब शक्तियाँ ढीली पड़ गईं। देवीने प्रत्यक्ष होकर महेभसे वर माँगनेको कहा। महेभने कहा—मुझे किसी वस्तुकी जरूरत नहीं है; परंतु इतनी तुमसे प्रार्थना है कि आजसे जीवोंकी हिंसा करना छोड़ कर तुम दयाधर्म स्वीकार करो।

देवीने "एवमस्तु" कह कर महेभको बहुतसे अमोल रत्न दिये, और इसके बाद वह अपने स्थान पर चली गई। महेभ फिर सुख-पूर्वक अपने नगरमें लौट आया। उसकी रास्तेकी घटना जिस जिसने सुनी उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। लोगों पर उसका खूब प्रभाव पड़ा। बहुतोंने जिनधर्म स्वीकार किया।

महेभको निर्विघ्न समुद्रयात्रासे लौट आया देख कर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। कारण जिस स्तोत्रके प्रभावसे अत्यन्त दुस्तर संसार-समुद्र भी जब तैर लिया जाता है तब उसकी तुलनामें इस छोटेसे समुद्रका तैर लेना कौन कठिन है। पर बात यह है—भोले पुरुष अतिशय देख कर ही बहुधा मुग्ध होते हैं। महेभ सुखसे रहने लगा और खूब दान-धर्म करने लगा।

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
त्वत्पादपङ्कजरजोमृतदिग्धदेहा
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः॥ ४५॥

हिन्दी–पद्यानुवाद।

अत्यन्त पीड़ित जलोदर-भारसे हैं
है दुर्दशा, तज चुके निजजीविताशा;
वे भी लगा तव पदाब्ज-रजःसुधाको
होते प्रभो! मदन-तुल्य सुरूप देही॥

प्रभो! जो भयंकर जलोदरके भारसे कुबड़े हो गए हैं, जिनकी अत्यन्त सोचनीय अवस्था हो गई है, और जो अपने जीवनसे सर्वथा निराश हो गए हैं ऐसे मनुष्य भी आपके चरण-कमलोंकी रजःसुधाको अपने शरीर पर लगा कर कामदेवके समान सुन्दर हो जाते हैं।

कलावतीकी कथा।

इस पद्यकी आराधनासे जलोदरादि भयंकर रोग नष्ट होते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है।

उज्जयिनीके राजाका नाम नृपशेखर है। उनका राज्य बहुत विस्तृत है। वे सब राजेंमें प्रतिष्ठित राजे गिने जाते हैं। उनकी रानीका नाम विमला है। वह सौभाग्यवती, पतिभक्ति-परायणा, विदुषी और सती है। इन सब गुणोंके साथ उसमें सुन्दरता भी अपूर्व है।

उसके पुत्रका नाम राजहंस था। वह बुद्धिमान, पराक्रमी, विनयी और सुशील था। असमयमें राजहंसकी माताका स्वर्गवास हो गया। उसके बाद पट्टरानीका पद कमलाको मिला। कमलाके भी एक पुत्र था। वह राजहंससे छोटा था। कमलाके हृदयमें अब यह चिन्ता हुई कि राजहंस बड़ा है, भाग्यशाली है, बलवान् है, राज्यके योग्य है और महाराज भी उसे बहुत प्यार करते हैं, तब इसके रहते हुए मेरे पुत्रको राज्य मिलना नितान्त असंभव है; और इसे राज्य मिलनेसे मेरे पुत्रकी और मेरी बड़ी दुर्दशा होगी। इसलिए किसी उपायसे इसे मार डालना चाहिए। परंतु प्रगटमें मारनेसे तो निन्दा और अपवादका भय है। तब सबसे अच्छा यह उपाय है कि इसे कोई ऐसा विष दिया जाय, जिससे इसका सब शरीर फूट निकले और धीरे धीरे यह अपने आप ही मर जाय। यह विचार कर रानीने, नृपशेखरके दिग्विजय करनेके लिए चले जाने पर राजहंसको भोजनके साथ जहर दे दिया।

कुछ दिनों बाद धीरे धीरे राजहंस पर उस जहरका असर होने लगा। उसके शरीरमें भगंदर, गुल्म, पाण्डु (पीलिया), प्रमेह आदि बहुतसे रोग पैदा हो गए। अकस्मात् राजहंस अपनी यह हालत देख कर

बड़े अचम्भेमें पड़ गया। उसे अनुसंधान करनेसे अपनी सोतेली माकी सब बातें ज्ञात हो गईं। उसने फिर उज्जयिनीमें एक क्षणभर भी रहना उचित न समझा और किसीसे कुछ न कह सुन कर वह वहाँसे चल दिया। धीरे धीरे वह हस्तिनापुर जा पहुँचा।

उस समय हस्तिनापुरके राजा मानगिरि थे। वे बड़े गर्विष्ठ थे। सबको बड़ी तुच्छ दृष्टिसे देखते थे। उनकी रानीका नाम मानवती था। उसके कलावती नामकी एक पुत्री थी।

एक दिन मानगिरि बैठे बैठे अपनी पुत्रीके साथ हँसी-विनोद कर रहे थे। उन्होंने हँसी हँसीमें कलावतीसे पूछा—पुत्री! अच्छा कह तो तेरा सुख मेरे अधीन है या कर्मोंके? और तू मुझसे सुखकी आशा रखती है या कर्मोंसे?

कलावतीने निडर होकर कहा—पिताजी! मनुष्य कर्मोंके सामने क्या कर सकता है? वह सब कुछ प्रयत्न करता है, कोशिशें करता है, पर होता वही है जो कर्म चाहते हैं। कर्म निरंकुश हैं। उनके सामने किसीकी नहीं चलती। सबको उनसे हार माननी पड़ती है। कर्मोंकी शक्तिसे ही यह जीव स्वर्ग-नरकमें जाता है, मनुष्य तथा पशु होता है, तब कौन ऐसा बली है जो कर्मोंको दबा सकता है?

पिताजी! बहुतसे लोग कहा करते हैं कि ईश्वर संसारका कर्त्ता है और कर्म कुछ वस्तु नहीं है। पर ऐसा कहनेवालोंसे मैं पूछती हूँ कि जो ईश्वर संसारका कर्त्ता है, उसके शरीर है या नहीं? यदि शरीर है, तब तो वह और हम एकहीसे हुए। इस हालतमें जैसे हम प्रत्येक कामको क्रमवार करते हैं वैसे ही उसे भी करना चाहिए। तब मैं पूछती हूँ कि सबसे पहले ईश्वरने क्या बनाया? और यदि क्रम-क्रमसे उसे

कार्योंका कर्ता न माना जाय तो यह भी संभव नहीं कि शरीरधारी एक साथ अनेक कार्योंको कर सके।

कदाचित् कहो कि वह अशरीरी होकर ही सब संसारका कर्त्ता है। सो यह भी केवल भ्रममात्र है। क्योंकि शरीरके बिना कोई मूर्तिक कार्य कभी नहीं बन सकते। जिस भाँति आकाशसे घट।

हाँ एक बात और मैं पूछती हूँ कि ईश्वर जब संसारको बनाता है तब वह किसीकी प्रतिमूर्ति देख कर बनाता है या बिना देखे ही? यदि देख कर बनाता है तब तो संसार अनादि ही ठहरेगा। क्योंकि जब जब वह उसे बनायगा तब तब उसकी प्रतिमूर्तिको देख कर ही बनायगा। और यदि बिना देखे ही बनाता है तो आकाशके फूल और गधेके सींग भी वह क्यों नहीं बना देता?

पिताजी! इन सब बातोंसे जान पड़ता है कि न तो ईश्वर संसारका कर्त्ता है और न मनुष्य ही किसीको सुख-दुःख पहुँचा सकता है। इस प्रकार बातों ही बातोंमें कलावतीने अपने पिताकी बातोंका जबाब देकर उन्हें निरुत्तर कर दिया।

मानगिरिको पुत्रीकी इस धृष्टतासे बहुत खेद हुआ। उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि वह मेरे कहनेको नहीं मानेगी। तब उन्होंने उसके अभिमानको नष्ट करने और उसके कर्मवादकी परीक्षा करनेको उज्ज-यिनीके महारोगी राजकुमार राजहंसके साथ, जो अभी हस्तिनापुरमें आया है, कलावतीका ब्याह कर दिया। ये नव दम्पति एक वृक्षकी छायामें बैठे बैठे अपने भविष्य-जीवनकी चिन्ता कर रहे थे कि इसी समय एक मुनि इधर आ गये। वे बड़े ज्ञानी और तपस्वी थे। नव दम्पतिने भक्ति-भावसे उन्हें नमस्कार कर पवित्र धर्मोपदेश सुना। अन्तमें

राजहंसने उनसे पूछा कि प्रभो ! इस रोगके मारे मैं बड़ा दुःखी हो रहा हूँ, इसलिए इसके नष्ट होनेका कोई उपाय बतलाइए।

मुनिने उसे भक्तामर-स्तोत्र सिखा कर और साथ ही "**उद्भूतभीषण जलोदरभारभुग्ना**" इस श्लोकका मंत्र बता कर उसकी साधन-विधि भी बतला दी। उनके कहे अनुसार तीनों काल उसका पाठ करते रहनेके कारण धीरे धीरे राजहंसका सब रोग जाता रहा और वह भला-चङ्गा हो गया। दिग्विजयसे लौटे हुए नृपशेखरको जब पुत्रका हाल जान पड़ा तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उसी समय पुत्रके ढूँढ़नेके लिए चारों ओर अपने कर्मचारियोंको भेजा। वे पता लगाते लगाते राजहंसके पास पहुँच गए। इससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पिताके दुःखका सब हाल राजकुमारसे कह सुनाया। अपने लिए पिताको दुखी सुन कर राजहंसको भी बहुत दुःख हुआ। वह वहाँसे फिर उसी समय रवाना होकर पिताके पास आ-पहुँचा। पुत्रके समागमसे नृपशेखरको अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

इसके बाद राजहँसको राज्य देकर और जिनदीक्षा ग्रहण कर नृपशेखर कठोर तप करने लगे।

उधर मानगिरिको भी राजकुमारके स्वस्थ हो जानेकी घटनासे यह निश्चय हो गया कि कर्मवाद भी कमजोर नहीं है। इसके बाद उन्होंने जैनधर्म स्वीकार कर अपनी पुत्रीसे अपराधकी क्षमा कराई और उसे बड़े प्रेमसे गले लगाया।

जिस स्तोत्रके प्रभावसे जन्म-जरा-मरण आदि भयंकर रोग तक नष्ट हो जाते हैं, उससे साधारण शारीरिक रोगोंका नष्ट होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

धर्मका प्रभाव अक्षुण्ण है। उससे सब कुछ हो सकता है। इसलिए सुखकी इच्छा रखनेवालोंको निरन्तर धर्मका सेवन करते रहना चाहिए।

आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः।
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

सारा शरीर जकड़ा दृढ़ साँकलोंसे,
बेड़ी पड़ें छिल गईं जिनकी सुजाँघें,
त्वन्नाम-मंत्र जपते जपते उन्होंके,
जल्दी स्वयं झड़ पड़ें सब बन्ध बेड़ी ॥

नाथ! जिनका पाँवोंसे लेकर कंठ पर्यन्त सारा शरीर बड़ी बड़ी लोहेकी साँकलोंसे खूब मजबूत जकड़ा हुआ है, और कठोर बेड़ियोंसे जिनकी जाँघें घिस गई हैं, वे लोग भी आपके नामरूपी पवित्र मंत्रका निरन्तर स्मरण कर बहुत शीघ्र ऐसे बन्धनके भयसे निवृत्त हो जाते हैं।

रणधीरकी कथा।

इस श्लोककी आराधना द्वारा मनुष्य लोहेकी साँकल और बेड़ियोंके कठिन बन्धनसे छुटकारा पा जाते हैं। इसकी कथा इस प्रकार है:—

भारतवर्षमें अजमेर प्रसिद्ध शहर है। जिस समयकी यह कथा है उस समय उसकी शोभा बहुत चढ़ी-बढ़ी थी। उसका ऊँचा प्रकार लंकाके प्रकारको लज्जित करता था। उसके गगन-चुम्बि महलोंकी श्रेणियाँ स्वर्गको नीचा दिखाती थीं।

इसके राजाका नाम नरपाल था। उनके एक पुत्र था। उसका नाम रणधीर था। वह बुद्धिमान तो था ही, पर इसके साथ ही प्रचण्ड वीर भी था। शत्रु तो उसका नाम सुनते ही काँप उठते थे।

रणधीरने न्याय, व्याकरण, साहित्य, मंत्र-शास्त्र आदि सब विषयोंके बहुत अच्छे विद्वान् अपने गुणचंद्र गुरुके पास भक्तामरका अचिन्त्य प्रभाव सुन कर मूल-सहित उसके मंत्रोंके साधनेकी विधि सीख ली।

अजमेरके पास एक पलाशखेट नामका छोटासा पर बहुत रमणीय नगर था। उसके शासनका भार नरपालने अपने रणधीर पुत्रको सौंप रक्खा था। अजमेरका कोट बहुत ऊँचा था—अजेय था। इसलिए योगिनीपुरके बादशाह सुलतानने अजमेर पर चढ़ाई करना अच्छा न समझ दूसरे उपायसे अजमेर राज्यको अपने वश कर लेनेके लिए पलाशखेट पर चढ़ाई करदी। उस समय रणधीर बेखबर था, इस कारण सुलतान अपनी अपार सेनाके बलसे रणधीरको जीता पकड़ कर उसे अपने शहरमें ले आया और लोहेकी साँकलोंसे बाँध कर उसे उसने कैदखानेमें डलवा दिया।

उस समय रणधीर बड़ी श्रद्धा और भक्तिके साथ जिन भगवानकी आराधना और 'आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टिताङ्गा' इस श्लोकके मंत्रका साधन करने लगा। मंत्रके प्रभावसे चक्रेश्वरीने आकर उसके सब बन्धन काट दिए। रणधीर बन्धन-रहित होकर सुलतानके सामने आ खड़ा हुआ। सुलतान उसे मुक्त हुआ देखकर आश्चर्यमें आ गया। उसने उसके छूट आनेमें अपने नौकरोंकी सहायता समझ कर उसे फिर बाँध कर कैदखानेमें डलवा दिया और अबकी बार उसकी रक्षाका खास प्रबंध किया। पर फिर भी उसका सब प्रयत्न निष्फल गया और रणधीर झटसे छूट कर निकल आया। तब सुलतान उसे मंत्र-तंत्रका जानकार समझ कर बड़ा घबराया। उसने रणधीरसे अपने अपराधकी क्षमा कराकर उसका बहुत सन्मान किया और खूब वस्त्राभूषण, धन, रत्नादि वगैरह भेंट देकर उसे उसकी राजधानीमें लौटा दिया।

रणधीर जब अपने नगरमें सकुशल लौट आया तब उसकी प्रजाने उसका बहुत स्वागत किया; सारे शहरको खूब सजाया, और अपने राजाकी प्रसन्नताके लिए खुब आनन्द उत्सव मनाया। रणधीर फिर पापियोंके लिए दुर्लभ राज्य-सुख भोगने लगा और अपना समय आनन्दसे बिताने लगा।

जिस स्तोत्रके पाठका इतना महत्त्व है कि जीव कर्मके बन्धनसे भी छूट जाता है उसीके प्रभावसे साधारण लोहे आदिके बन्धनसे मुक्ति पा लेना कोई आश्चर्यकी बात नहीं; किन्तु होना चाहिए पवित्र भावोंके साथ ईश्वराराधन।

मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
संग्रामवारिधिमहोदरबन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४७ ॥
स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं
तं मान–तुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः॥ ४८ ॥

हिन्दी-पद्यानुवाद।

जो बुद्धिमान इस सुस्तवको पढ़े हैं,
होके विभीत उनसे भय भाग जाता—
दावाग्नि-सिन्धु-अहिका, रण-रोगका, त्यों—
पञ्चास्य मत्त गजका, सब बन्धनोंका॥
तेरे मनोज्ञ गुणसे स्तवमालिका ये,
गूँथी प्रभो! विविधवर्ण-सुपुष्पवाली—
मैंने सभक्ति, जन कण्ठ धरे इसे जो
सो मानतुंग सम प्राप्त करे सुलक्ष्मी॥

नाथ ! जो बुद्धिमान् आपके इस स्तोत्रका निरन्तर पाठ किया करते हैं, वे उन्मत्त हाथी, सिंह, दावानल, सर्प, युद्ध, समुद्र, जलोदर और बन्धन आदि द्वारा होनेवाले भयसे शीघ्र ही मुक्त हो जाते हैं—भय ऐसे लोगोंसे डरे हुएकी भाँति नष्ट हो जाता है।

जिनेन्द्र! आपके पवित्र गुणोंसे अथवा प्रसाद, माधुर्य आदि गुणोंसे (मालाके पक्षमें दूसरा अर्थ—सूतके डोरेसे) युक्त और सुन्दर सुन्दर अक्षररूपी विचित्र फूलोंसे (दूसरा अर्थ—अनेक प्रकारके मनोहर और सुगन्धित फूलोंसे) भक्ति-पूर्वक मेरे द्वारा रची हुई (दूसरा अर्थ—गूँथी हुई) इस स्तोत्ररूपी मालाको (दूसरा अर्थ—फूलोंकी मालाको) संसारमें जो पुरुष अपने कंठमें धारण करते हैं, उन उन्नत हृदय-वाले लोगोंको या इस स्तोत्रके बनानेवाले मुझ मानतुंग मुनिको राज-वैभव या स्वर्ग-मोक्ष-रूपी लक्ष्मी अवश होकर प्राप्त होती है। अर्थात् आपके इस पवित्र स्तोत्रका प्रतिदिन श्रद्धा-भक्तिके साथ पाठ करनेवाले लोगोंको धन-सम्पत्ति, राज्य-वैभव, स्वर्ग आदि विभूति बिना किसी कष्टके प्राप्त होती है।

ग्रन्थकारका वक्तव्य और प्रशस्ति ।

भक्तामर-स्तोत्रका बड़ा भारी माहात्म्य है । उसे बृहस्पति और ब्रह्मा भी लिखने अथवा कहनेको समर्थ नहीं, तब मुझसा अल्पज्ञ कैसे लिख सकता है । इसलिए अल्पज्ञता-वश मेरे लिखनेमें जो भूलें हुई हैं उन्हें बुद्धिमान् और विद्वान् लोग सुधार कर मुझे क्षमा करें ।

इस स्तोत्रके प्रत्येक श्लोकमें मंत्रोंके बीजाक्षर बुद्धिमानी और पाण्डित्यके साथ निवेशित किए गए हैं । इसलिए सर्व-साधारणकी इसमें गति होना बहुत ही कठिन, बल्कि असंभव है । इसलिए इस विषयको गुरुओं द्वारा ही समझना चाहिए । कारण जैन लोग गुरु-ओंके द्वारा कठिनसे कठिन कामको भी बहुत शीघ्र सिद्ध कर डालते हैं।

सकलचंद्र गुरुके दो शिष्य हैं । एक तो जैस और दूसरा मैं (रायमल्ल) । सो गुरुभाई जैसके प्रेम-वश हो मैंने यह श्रेष्ठ और संक्षिप्त भक्तामर-कथा लिखी है ।

इस स्तोत्रके एक एक मंत्रको सिद्ध करके भी जब बहुतोंने फल प्राप्त किया, तब जो लोग सारे स्तोत्रका पाठ करते हैं, उसके मंत्रोंका साधन करते हैं, उनके लाभका तो पूछना ही क्या? मंत्रोंके प्रभावसे जो राज्य, धन, ऐश्वर्य, पुत्र, निरोगता आदि प्राप्त होते हैं वह तो स्तोत्रका आनुषंगिक फल है। जिस भाँति गेहूँकी खेती करनेवालेको गेहूँके साथ साथ भुसी आनुषंगिक—बिना किसी कष्टके मिल जाती है, उसी भाँति स्तोत्रका मुख्य फल सर्वज्ञ-पदकी प्राप्ति होकर मोक्षलाभ है और राज्य-वैभव, धन-सम्पत्ति आदिका प्राप्त होना उसका आनुषंगिक फल है।

श्रीहूँबड़-वंश-तिलक **मह्ल** नामके एक अच्छे धनी हो गए हैं। उनकी विदुषी भार्याका नाम **चम्पाबाई** था। वे बड़ी धर्मात्मा और श्रावक-व्रतकी धारक थीं। उनके जिन-चरण-कमल-भ्रमर पुत्र रायमल्लने (मैंने) वादिचन्द्र मुनिकी कृपा लाभ कर यह छोटी, सरल और सुबोध भक्तामर-कथा लिखी है।

ग्रीवापुरमें एक **मही** नामकी नदी है। उसके किनारे पर चन्द्रप्रभ भगवानका बहुत विशाल मन्दिर है। उसमें कर्मसी नामके एक ब्रह्मचारी रहते हैं। उन्होंने मुझे भक्तामर-कथा लिख देनेको कहा। उन्हींके अनुरोधसे मैंने यह कथा लिखी है।

इस कथाके पूर्ण करनेका संवत् १६६७ और दिन आषाढ़ सुदी ५ बुधवार है।

मेरी इच्छा है कि भव्यजन इस कथासारके द्वारा लाभ उठा कर अपना कल्याण करें और मेरे इस छोटेसे परिश्रमको सफल करें।

भक्तामरकथा समाप्त।

स्वर्गीय पण्डित हेमराजजीकृत

भाषा-भक्तामर ।

दोहा ।

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार ।
धरमधुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥

चौपाई ।

सुरनतमुकुटरतन छबि करैं । अंतर पापतिमिर सब हरैं ॥
जिनपद बंदों मनवचकाय । भवजलपतित-उधारनसहाय ॥ १ ॥
श्रुतिपारग इंद्रादिक देव । जाकी थुति कीनी कर सेव ॥
शब्द मनोहर अरथ विशाल । तिस प्रभुकी बरनों गुनमाल ॥२॥
विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन । होय निलज थुति मनसा कीन ॥
जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै । शशिमंडल बालक ही चहै ॥ ३ ॥
गुनसमुद्र तुम गुन अविकार । कहत न सुरगुरु पावै पार ॥
प्रलयपवनउद्धत जलजंतु । जलधि तिरै को भुज बलवंतु ॥४॥
सो मैं शक्तिहीन थुति करूं । भक्तिभाववश कछु नहिं डरूँ ॥
ज्यों मृग निजसुतपालन हेत । मृगपतिसम्मुख जाय अचेत ॥५॥
मैं शठ सुधी हँसनको धाम । मुझ तुव भक्ति बुलावै राम ॥
ज्यों पिक अंबकली-परभाव । मधुरितु मधुर करैं आराव ॥६॥
तुम जस जंपत जिन छिनमाहिं । जनमजनमके पाप नशाहिं ॥
ज्यों रवि उगै फटै ततकाल । अलिवत् नील निशातमजाल ॥७॥
तुव प्रभावतैं करहुँ विचार । होसी यह थुति जनमनहार ॥
ज्यों जल कमलपत्रपै परै । मुक्ताफलकी दुति विस्तरै ॥ ८ ॥
तुम गुनमहिमा हतदुखदोष । सो तो दूर रहो सुखपोष ॥
पापविनाशक है तुम नाम । कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥९॥

नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत। तुमसे तुम गुण बरनत संत॥
जो अधीनको आप समान। करै न सो निन्दित धनवान॥१०॥
इकटक जन तुमको अवलोय। औरविषैं रति करै न सोय॥
को करि खीरजलधिजलपान। खारनीर पीवै मतिमान॥११॥
प्रभु तुम वीतराग गुनलीन। जिन परमानु देह तुम कीन॥
हैं तितने ही ते परमानु। यातैं तुमसम रूप न आन॥ १२ ॥
कहँ तुम मुख अनुपम अविकार। सुरनरनागनयनमनहार॥
कहाँ चंद्रमंडल सकलंक। दिनमें ढाकपत्रसम रंक॥ १३ ॥
पूरनचंद्र जोति छबिवंत। तुम गुन तीनजगत लंघंत॥
एकनाथ त्रिभुवन आधार। तिन विचरत को करै निवार॥१४॥
जो सुरतियविभ्रम आरंभ। मन न डिग्यौ तुम तौ न अचंभ॥
अचल चलावै प्रलय समीर। मेरुशिखर डगमगै न धीर॥१५॥
धूमरहित बाती गतनेह। परकाशै त्रिभुवन घर येह॥
वातगम्य नाहीं परचंड। अपर दीप तुम बलो अखंड॥ १६ ॥
छिपहु न लुपहु राहुकी छाहिं। जगपरकाशक हो छिनमाहिं॥
घन अनवर्त्त दाह विनिवार। रवितैं अधिक धरो गुनसार॥१७॥
सदा उदित विदलिततममोह। विघटितमेघ राहु अविरोह॥
तुम मुखकमल अपूरब चंद। जगतविकाशी जोति अमंद॥१८॥
निशदिन शशिरविको नहिं काम। तुम मुखचंद हरै तमधाम॥
जो स्वभावतैं उपजे नाज। सजल मेघतैं कौनहु काज॥ १९ ॥
जो सुबोध सोहै तुममाहिं। हरि हर आदिकमें सो नाहिं॥
जो दुति महारतनमें होय। काचखंड पावै नहिं सोय॥ २० ॥

नाराच छन्द ।

सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,
स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया ।
कछू न तोहि देखके जहां तुही विशेखिया,
मनोग चित्तचोर, और भूलहू न देखिया ॥ २१ ॥
अनेक पुत्रवंतिनी नितंबिनी सपूत हैं,
न तो समान पुत्र और माततैं प्रसूत हैं ।
दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै,
दिनेश तेजवंत एक पूर्व ही दिशा जनै ॥ २२ ॥
पुरान हो पुमान हो पुनीत पुन्यवान हो,
कहैं मुनीश अंधकारनाशको सुभान हो ।
महंत तोहि जानके न होय वश्य कालके,
न और मोख मोखपंथ देव तोहि टालके ॥ २३ ॥
अनंत नित्य चित्तकी अगम्यरम्य आदि हो,
असंख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो ।
महेश कामकेतु जोगईश जोग ज्ञान हो,
अनेक एक ज्ञानरूप शुद्ध संतमान हो ॥ २४ ॥
तुही जिनेश बुद्ध है सुबुद्धिके प्रमानतैं,
तुही जिनेश शंकरो जगत्त्रियै विधानतैं ।
तुही विधात है सही सुमोखपंथ धारतैं,
नरोत्तमो तुही प्रसिद्ध अर्थके विचारतैं ॥ २५ ॥
नमो करूँ जिनेश तोहि आपदा निवार हो,
नमो करूँ सुभूरि भूमिलोकके सिंगार हो ।
नमो करूँ भवाब्धिनीरराशिशोखहेतु हो,
नमो करूँ महेश तोहि मोखपंथ देत हो ॥ २६ ॥

चौपाई ।

तुम जिन ! पूरनगुनगन भरे । दोष गरबकरि तुम परिहरे ॥
और देवगन आश्रय पाय । सुपन न देखे तुम फिर आय ॥२७॥
तरुअशोकतर किरण उदार । तुम तन शोभित है अविकार ॥
मेघ निकट ज्यों तेज फुरंत । दिनकर दिपै तिमिरनिहनंत ॥२८॥
सिंहासन मणिकिरनविचित्र । ता पर कंचनवरन पवित्र ॥
तुम तन शोभित किरनबिथार । ज्यों उदयाचल रवि तमहार ॥२९॥
कुंदपुहुप सितचमर ढरंत । कनकवरन तुम तन सोभंत ॥
ज्यों सुमेरुतट निर्मल कांति । झरना झरैं नीर उमगांति ॥३०॥
ऊँचे रहैं सूर-दुति-लोप । तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥
तीन लोककी प्रभुता कहैं । मोती झालरसों छबि लहैं ॥ ३१ ॥
दुंदुभि शब्द गहर गंभीर । चहुँदिशि होय तुम्हारे धीर ॥
त्रिभुवनजन शिवसंगम करैं । मानों जय जय रव उच्चरैं ॥३२॥
मंद पवन गंधोदक इष्ट । विविध कल्पतरु पुहुपसुवृष्ट ॥
देव करैं विकसित दल सार । मानों द्विजपंकति अवतार ॥३३॥
तुम तन भामंडल जिनचंद । सब दुतिवंत करत है मन्द ॥
कोटि शंख रवि तेज छिपाय । शशिनिर्मलनिशि करै अछाय ॥३४॥
स्वर्गमोक्षमारग संकेत । परमधरम उपदेशन हेत ॥
दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध । सबभाषागर्भित हितसाध ॥३५॥

दोहा ।

विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुति मिल चमकाहिं ।
तुम पद पदवी जहँ धरैं, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥ ३६ ॥
ऐसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय ।
सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागन होय ॥ ३७ ॥

षट्पद।

मदअवलिप्तकपोल—मूल अलिकुल झंकारैं।
तिन सुन शब्द प्रचंड, क्रोध उद्धत अति धारैं॥
कालवरन विकराल, कालवत् सनमुख आवै।
ऐरावत सो प्रबल, सकल जन भय उपजावै॥
देखि गयंद न भय करै, तुम पद महिमा लीन।
विपतिरहित संपतिसहित, बरतै भक्त अदीन॥ ३८॥
अतिमदमत्त गयंद, कुम्भथल नखन बिदारै।
मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै॥
बांकी दाढ़ विशाल वदनमें रसना लोलै।
भीम भयानकरूप देखि जनथरहर डोलै॥
ऐसे मृगपति पग तलैं, जो नर आयो होय।
शरन गहे तुव चरनकी, बाधा करै न सोय॥ ३९॥
प्रलयपवनकरि उठी आग जो तास पटंतर।
बमै फुलिंग शिखा, उतंग परजलैं निरंतर॥
जगत समस्त निगल्ल, भस्म करहैगी मानो।
तड़तड़ाट दव अनल, जोर चहुँदिशा उठानो॥
सो इक छिनमें उपशमैं, नामनीर तुम लेत।
होय सरोवर परिणमै, विकसित कमल समेत॥ ४०॥
कोकिलकंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता।
रक्तनयन फुंकार, मार—विषकन उगलंता॥
फनको ऊँचो करै, बेग ही सनमुख धाया।
तुव जन होय निशंक, देख फनपतिको आया॥

जो चापै निज पांवतैं, व्यापै विष न लगार।
नागदमनि तुम नामकी, है जिनके आधार ॥ ४१ ॥
जिस रनमाहिं भयान, शब्द कर रहे तुरंगम।
घनसे गज गरजाहिं, मत्त मानो गिरि जंगम ॥
अति कोलाहलमाहिं, बात जहँ नाहिं सुनीजै।
राजनको परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥
नाथ तिहारे नामतैं, सो छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय ॥ ४२ ॥
मारे जहां गयंद, कुम्भ हथियार बिदारे।
उमगे रुधिरप्रवाह, बेग जलसे विस्तारे ॥
होयँ तिरन असमर्थ, महाजोधा बल पूरे।
तिस रनमें जिन तोय, भक्त जे हैं नर सूरे ॥
दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावैं निकलंक।
तुम पदपंकज मन बसैं, ते नर सदा निशंक ॥ ४३ ॥
नक्र चक्र मगरादि, मच्छकरि भय उपजावै।
जामें वड़वा अग्नि, दाहतैं नीर जलावै ॥
पार न पावै जास, थाह नहिं लहिये जाकी।
गरजै अति गंभीर, लहरकी गिनति न ताकी ॥
सुखसों तिरैं समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं।
लोल कलोलनके शिखर, पार यान ले जाहिं ॥ ४४ ॥
महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे हैं।
बात पित्त कफ कुष्ट, आदि जो रोग गहे हैं ॥
सोचत रहैं उदास, नाहिं जीवनकी आशा।
अति घिनावनी देह, धरैं दुर्गंधनिवासा ॥

तुम पदपंकजधूलको, जो लावैं निज अंग।
ते नीरोग शरीर लहि, छिनमैं होयँ अनंग॥ ४५॥
पांव कंठतैं जकर, बांध सांकल अति भारी।
गाढ़ी बेड़ी पैरमाहिं, जिन जांघ विदारी॥
भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे विललाने।
सरन नाहिं जिन कोय, भूपके बंदीखाने॥
तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं।
छिनमें ते सम्पति लहैं, चिंता भय विनसाहिं॥ ४६॥
महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल।
फनपति रन परचंड, नीरनिधि रोग महाबल॥
बन्धन ये भय आठ, डरपकर मानों नाश।
तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशैं॥
इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय।
यातैं तुम पद भक्तको, भक्ति सहाई होय॥ ४७॥
यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी।
विविध वर्णमय पुहुप, गूंथ मैं भक्ति बिथारी॥
जे नर पहरैं कंठ, भावना मनमें भावैं।
मानतुंग ते निजाधीन, शिवलछमी पावैं॥
भाषा-भक्तामर कियो, हेमराज हितहेत।
जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिवखेत॥ ४८॥

समाप्त।

ऋद्धि, मंत्र और साधनविधि।

१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमोजिणाणं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं श्रीं क्लीं ब्लूं क्रौं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

विधि—पवित्र भावोंके साथ प्रतिदिन १०८ बार ऋद्धिमंत्रको जपने और यंत्रके पास रखनेसे सब प्रकारके उपद्रव नष्ट होते हैं।

२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहिजिणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः।

विधि—काला वस्त्र पहरे, काली माला लिए, काले आसनपर बैठे, पूर्व दिशा की ओर मुख किए, दंडासन बैठकर २१ दिनतक प्रतिदिन १०८ बार अथवा ७ दिनतक प्रतिदिन १००० ऋद्धिमंत्रका जाप करनेसे शत्रु नष्ट होते हैं, सिर दुखना बन्द होता है और यंत्र पास रखनेसे नजर बन्द होती है। मंत्र साधने तक नमकसे होम करना चाहिए और दिनमें एक बार भोजन करना चाहिए।

३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहिजिणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नमः स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्रको कमलगट्टेकी माला द्वारा ७ दिनतक प्रतिदिन त्रिकाल १०८ बार जपना चाहिए। होमके लिए दशांगधूप हो और चढ़ानेको गुलाबके फूल हों। चुल्लूमें पानी मंत्रकर २१ दिन तक मुँहपर छींटनेसे सब प्रसन्न होते हैं और यंत्र पास रखनेसे शत्रुकी नजर बन्द होती है।

४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहिजिणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्राजलदेवताभ्यो नमः स्वाहा।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्रका सफेद मालासे ७ दिनतक प्रतिदिन १००० बार

जाप करना, सफेद फूल चढ़ाना, एक भुक्त करना और पृथ्वीपर सोना। यंत्र पास रखकर और '**भ्यो नमः स्वाहा**' इस मंत्र द्वारा एक एक कंकरीको सात सात बार मंत्रकर इसी तरह इकवीस कंकरियोंको जलमें डालनेसे जालमें मछलियाँ नहीं आती हैं।

५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौं सर्वसंकटनिवारणेभ्यः सुपार्श्वयक्षेभ्यो नमोनमः स्वाहा।

विधि—पीला वस्त्र पहरकर ७ दिन तक प्रतिदिन १००० जाप करना, पीले पुष्प चढ़ाना और कुन्दरुकी धूप दहन करना।

जिसकी आँखें दुखती हों उसे सारे दिन भूखा रखकर शामको मंत्र द्वारा २१ बार मंत्रे हुए पतासेको जलमें घोलकर पिलाने या आँखोंपर छींटनेसे दुखती हुई आँखें बन्द होती हैं। कुएमें छिड़कनेसे लाल कीड़े नहीं होते। यंत्र पास रखना चाहिए।

६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कुट्ठबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रां श्रीं श्रूं श्रः हं सं थ थ थः ठः ठः सरस्वती भगवती विद्याप्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—लाल वस्त्र पहरकर २१ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप करने और यंत्र पास रखनेसे विद्या बहुत शीघ्र आती है। बिछुड़ा हुआ आ मिलता है। इस विधिमें लाल फूल हों, धूप कुन्दरुकी हो और पृथ्वीपर सोना चाहिए तथा एक भुक्त करना चाहिए।

७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हंणमो बीजबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं हं सं श्रां श्रीं क्रौं क्लीं सर्वदुरितसंकटक्षुद्रोपद्रवकष्टनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—हरे रंगकी मालासे २१ दिनतक प्रतिदिन १०८ बार जपने और यंत्र गलेमें बांधनेसे सर्पका विष उतर जाता है, और किसी प्रकारका विष लाग नहीं करता। इसके सिवा ऋद्धिमंत्र द्वारा १०८ बार कंकरी मंत्रकर सर्पके सिर पर मारनेसे सर्प कीलित हो जाता है। इस विधिमें यंत्र हरा और धूप लोभानकी हो।

८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादाणुसारिणं।

मंत्र--ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ ह्रीं लक्ष्मणरामचन्द्रदेव्यै नमः स्वाहा।

विधि—अरीठाके बीजकी मालासे २१ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप करने और यंत्र पास रखनेसे सब प्रकारका अरिष्ट दूर होता है। तथा नमककी ७ डली लेकर एक एकको १०८ बार मंत्र कर किसी पीड़ित अंगको झाड़नेसे पीड़ा मिटती है। इस विधिमें धूप घृत मिले हुए गुग्गुलकी हो और नमककी डलीको होममें रखना चाहिए।

९—

ऋद्धि--ॐ ह्रीं णमो अरिहंताणं णमो संभिण्णसोदराणं ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् स्वाहा।

मंत्र--ॐ ह्रीं श्रीं क्रौं इ्वीं रः रः हं हः नमः स्वाहा।

विधि--चार कंकरीको १०८ आठ बार मंत्रकर चारों दिशाओंमें फेंकनेसे और यंत्र पास रखनेसे रास्ता कीलित हो जाता है, कोई प्रकारका भय नहीं रहता, चोर चोरी नहीं कर पाता।

१०--

ऋद्धि--ॐ ह्रीं अर्हं णमो सयंबुद्धीणं।

मंत्र—जन्मसध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्षधृतावादिनोर्यानाक्षान्ता भावे प्रत्यक्षा बुद्धान्मनो ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः श्रां श्रीं श्रूं श्रः सिद्धबुद्धकृतार्थो भव भव वषट् सम्पूर्णं स्वाहा।

विधि--उक्त ऋद्धिमंत्रकी आराधना तथा यंत्र पास रखनेसे कुत्तेका विष उतरता है। और नमककी ७ डली लेकर प्रत्येकको १०८ बार मंत्रकर खानेसे कुत्तेके विषका असर नहीं होता। विधान-पीले रंगकी मालासे मंत्रकी आराधना करनी चाहिए और धूप कुन्दरुकी हो। ७ या १० दिनतक १०८ बार जपना चाहिए।

११—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पत्तेयबुद्धीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रां श्रीं कुमतिनिवारिण्यै महामायायै नमः स्वाहा।

विधि—स्नानकरके पवित्र वस्त्र पहरे और दीप, धूप, नैवेद्य, फल लिए प्रसन्न चित्तसे खड़े रहकर सफेद मालासे १०८ बार जपने और यंत्र पास रखनेसे जिसे बुलानेकी इच्छा हो वह आ सकता है। और लाल मालासे २१ दिनतक प्रतिदिन

१०८ बार जपनेसे भी उपर्युक्त फल होता है। इस विधिमें धूप कुन्दरुकी होनी चाहिए।

१२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वोहिबुद्धीणं ।

मंत्र—ॐ आं आं अं अः सर्वराजाप्रजामोहिनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और १०८ बार उक्त मंत्र द्वारा तेल मंत्रकर हाथीको पिलानेसे उसका मद उतर जाता है। विधान-४२ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप लाल मालासे करना चाहिए। धूप दशांग हो।

१३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो ऋजुमदीणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं हं सः ह्रौं ह्रां ह्रीं द्रां द्रीं द्रौं द्रः मोहनी सर्वजनवश्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—यंत्र पास रखने और ७ कंकरी लेकर प्रत्येकको १०८ बार मंत्र-कर चारों ओर फेंकनेसे चोर चोरी नहीं कर पाते और रास्तेमें किसी प्रकारका भय नहीं रहता। विधान-पीली मालासे ७ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप करना चाहिए। धूप कुन्दरुकी हो। पृथ्वीपर सोना चाहिए और एक भुक्त करना चाहिए।

१४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विवुलमदीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती महामानसी स्वाहा ।

विधि—यंत्र पास रखने और ७ कंकरी लेकर प्रत्येकको २१ बार मंत्रकर चारों ओर फेंकनेसे व्याधि, शत्रु आदिका भय नष्ट होता है, लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वातरोग नष्ट होता है।

१५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्रशृंखला मानसी महामानसी स्वाहा ।

विधि—यंत्र पास रखने और मंत्रद्वारा २१ बार तेल मंत्रकर मुखपर लगानेसे राजदरबारमें बोलबाला रहे, सौभाग्य बढ़े और लक्ष्मीकी प्राप्ति हो। विधान-१४ दिनतक प्रतिदिन लाल माला द्वारा १००० जाप करनी चाहिए, दशांग धूप हो और एकभुक्त करना चाहिए।

१६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं।

मंत्र—ॐ नमः सुमंगला सुसीमा नाम देवी सर्वसमीहितार्थं वज्रश्रृंखलां कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और १०८ बार मंत्र जपकर राजदरबारमें जानेसे प्रतिपक्षीकी हार होती है, शत्रुका भय नहीं रहता। विधान-९ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप हरे रंगकी माला द्वारा करनी चाहिए। धूप कुन्दरूकी हो।

१७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठांग महाणिमित्तकुशलाणं।

मंत्र—ॐ नमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रपीड़ा जठरपीड़ा भंजय भंजय सर्वपीड़ा सर्वरोगनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और अछूता पानी मंत्रद्वारा २१ बार मंत्रकर पिलानेसे पेटकी असाध्य पीड़ा तथा वायुशूल, गोला आदि सभी रोग मिटते हैं। विधान-७ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप सफेद माला द्वारा करनी चाहिए। धूप चन्दन की हो।

१८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विउयणयड्डिपत्ताणं।

मंत्र—ॐ नमो भगवते जयविजय मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखने और १०८ बार मंत्र जपनेसे शत्रु अथवा शत्रुकी सेनाका स्तंभन होता है। विधान-७ दिनतक प्रतिदिन १००० जाप लाल मालासे करना चाहिए। धूप दशांग हो और एक बार भोजन करना चाहिए।

१९—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष ह्रीं वषट् नमः स्वाहा।

विधि—यंत्र पास रखनेसे और मंत्रको १०८ बार जपनेसे अपने पर प्रयोग किये हुए दूसरेके मंत्र, विद्या, टोटका, जादू, मूठ आदिका असर नहीं होता; उच्चाटनका भय नहीं रहता।

२०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाणं।

मंत्र—ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रः शत्रुभयनिवारणाय ठः ठः नमः स्वाहा ।

विधि—यंत्र पास रखने और मंत्रको १०८ बार जपनेसे सन्तानकी प्राप्ति होती है, लक्ष्मी मिलती है, सौभाग्य बढ़ता है, विजयलाभ होता है और बुद्धि बढ़ती है ।

२१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्णसमणाणं ।

मंत्र—ॐ नमः श्रीमणिभद्र जय विजय अपराजिते सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—मंत्रको ४२ दिनतक प्रतिदिन १०८ बार जपनेसे और यंत्र पास रखनेसे सब अपने अधीन होते हैं ।

२२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं ।

मंत्र—ॐ नमो श्रीवीरेहिं जृंभय जृंभय मोहय मोहय स्तंभय स्तंभय अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—डाकिनी, शाकिनी, भूत, पिशाच, चुड़ेल जिसे लगी हों उसे मंत्र द्वारा हल्दीकी गांठको २१ बार मंत्रकर चबानेसे और गलेमें यंत्र बांधनेसे उक्त सब प्रकारके दोष मिटते हैं ।

२३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थं मोक्षसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—पहले मंत्रको १०८ बार जपकर अपने शरीरकी रक्षा करे । पश्चात् जिसे प्रेतबाधा हो उसे झाड़े और यंत्र पास रक्खे । इससे प्रेतबाधा दूर होती है ।

२४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठिविसाणं ।

मंत्र—स्थावरजंगमवायकृतिमं सकलविषं यद्भक्तेः अप्रणमिताय ये दृष्टिविषयान्मुनीन्ते वड्ढमाणस्वामी सर्वहितं कुरु कुरु स्वाहा । ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अ सि आ उ सा झौं स्वाहा ।

विधि—मंत्रद्वारा २१ बार राख मंत्रकर दुखते हुए सिरपर लगानेसे और यंत्र पास रखनेसे सिरकी सब पीड़ाएं दर होती हैं । मंत्र १०८ बार प्रतिदिन जपना चाहिए ।

२५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्गतवाणं ।

मंत्र—ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रां झ्रौं स्वाहा । ॐ नमो भगवते जयविजयापराजिते सर्वसौभाग्यं सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे धीज उतरती है, तथा आराधकपर अग्निका असर नहीं होता ।

२६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो दित्ततवाणं ।

मंत्र—ॐ नमो ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रूं ह्रूं परजनशान्तिव्यवहारे जयं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमंत्र द्वारा १०८ बार तेल मंत्र कर सिरपर लगानेसे और यंत्र पास रखनेसे आधासीसी आदि सब सिरके रोग मिट जाते हैं । मंत्रे हुए तेलसे मालिश करने और मतरा हुआ जल पिलानेसे प्रसूताको संतान जल्दी हो जाती है ।

२७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो तत्ततवाणं ।

मंत्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेणानुकूलं साधय साधय शत्रुनुन्मूलयोन्मूलय स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमंत्रकी आराधना करने और यंत्र पास रखनेसे शत्रु आराधनमें कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता । २१ दिनतक काली मालासे जाप करनेसे शत्रुका नाश होता है । नित्य १ बार अलोना भोजन करना चाहिए और कालीमिर्चका होम करना चाहिए ।

२८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते जयविजय जृंभय जृंभय मोहय मोहय सर्वसिद्धिसम्पत्तिसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे सब काम सिद्ध होते हैं, व्यापारमें लाभ होता है, सुख प्राप्त होता है, विजय होती है ।

२९—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरतवाणं ।

मंत्र—ॐ णमो णमिऊण पासं विसहरफुलिंगमंतो विसहरनामरकारमंतो सर्वसिद्धिमीहे इह समरंताणमण्णे जागई कप्पदुमच्चं सर्वसिद्धिः ॐ नमः स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्र द्वारा १०८ बार पानी मंत्रकर पिलानेसे और यंत्र पास रखनेसे दुखती हुई आँखें अच्छी होती हैं तथा बिच्छूका विष उतर जाता है ।

३०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं ।

मंत्र—ॐ नमो अर्हे मर्हे क्षुद्रविघट्टे क्षुद्रान् स्तंभय स्तंभय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा ।

फल—उक्त ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे शत्रुका स्तंभन होता है; और राहमें चोर और सिंहका भय नहीं रहता ।

३१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं ।

मंत्र—ॐ उवसग्गहरं पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं विसहरविसणिर्णासिणं मंगल-कल्लाण आवासं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा ।

फल—इस मंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे राजमान्यता होती है; तथा दाद और खाज मिट जाती है ।

३२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणवंभचारिणं ।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वदोषनिवारणं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धि मंत्रद्वारा अविवाहित बालिकाका काता हुआ सूत १०८ बार मंत्रकर उसे गलेमें बांधने और यंत्र पास रखनेसे संग्रहणी आदि पेटकी सब पीड़ाएँ नष्ट होती हैं ।

३३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं ध्यानसिद्धिपरमयोगीश्वराय नमो नमः स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्र द्वारा अविवाहित बालिकाके काते हुए सूतके २१ बार मंत्रकर बनाए हुए गंडेको बाँधनेसे, झाड़ा देनेसे तथा यंत्रके रखनेसे एकांतरा, तिजारी, ताप आदि सब रोग नष्ट होते हैं । इस विधिमें धूप और घृत मिले हुए गुग्गुलकी धूप होना चाहिए ।

३४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं ।

मंत्र—ॐ नमो ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं ह्रौं पद्मावत्यै देव्यै नमो नमः स्वाहा ।

विधि—कुसूमके रंगसे रँगे हुए सूतको १०८ बार ऋद्धिमंत्र द्वारा मंत्रकर और उसे गुग्गुलकी धूप देकर बाँधने तथा यंत्रके पास रखनेसे गर्भका स्तंभन होता है—असमयमें गर्भका पतन नहीं होता है ।

३५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताणं ।

मंत्र—ॐ नमो जयविजयापराजित महालक्ष्मी अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृतं भव भव वषट् सुधाय स्वाहा ।

विधि—उक्त ऋद्धिमंत्रकी आराधना करने और यंत्र पास रखनेसे दुर्भिक्ष, चोरी, मरी, मिरगी, राजभय आदि सब नष्ट होते हैं । इस मंत्रकी आराधना स्थानकमें करनी चाहिए और यंत्रका पूजन करना चाहिए ।

३६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं कलिकुण्डदण्डस्वामिन् आगच्छ आगच्छ आत्ममंत्रान् आकर्षय आकर्षय आत्ममंत्रान् रक्ष रक्ष परमंत्रान् छिन्द छिन्द मम समीहितं कुरु कुरु स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्र पास रखनेसे सम्पत्तिलाभ होता है । विधान—१२००० जाप लाल पुष्प द्वारा करनी चाहिए और यंत्रकी पूजन भी साथमें करनी चाहिए ।

३७—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ ह्रीं मनोवांछितासिद्ध्यै नमो नमः अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा ।

विधि—ऋद्धिमंत्र द्वारा २१ बार पानी मंत्रकर मुँहपर छींटनेसे और यंत्र पास रखनेसे दुर्जन वश होता है–उसकी जीभका स्तंभन होता है ।

३८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणवलीणं ।

मंत्र—ॐ नमो भगवते महानागकुलोच्चाटिनी कालदष्टमृतकोत्थापिनी परमंत्र-प्रणाशिनी देवि शासनदेवते ह्रीं नमो नमः स्वाहा ।

फल—ऋद्धिमंत्र जपने और यंत्र पास रखनेसे धनलाभ होता है, और हाथी वशमें होता है।

३९—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचवलीणं।

मंत्र—ॐ नमो एषु वृत्तेषु वर्द्धमान तव भयहरं वृत्तिवर्णा येषु मंत्राः पुनः स्मर्तव्या अतोना परमंत्रनिवेदनाय नमः स्वाहा।

फल—ऋद्धिमंत्र जपने और यंत्र पास रखनेसे सर्प और सिंहका भय नहीं रहता तथा भूली हुई रास्ता मिल जाती है।

४०—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रां ह्रीं अग्निमुपशमनं शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धि मंत्र द्वारा २१ बार पानी मंत्रकर घरके चारों ओर छींटने और यंत्र पास रखनेसे अग्निका भय मिट जाता है।

४१—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरसवीणं।

मंत्र—ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः जलदेविकमले पद्महृदनिवासिनी पद्मोपरिसंस्थिते सिद्धिं देहि मनोवाञ्छितं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धिमंत्रके जपने और यंत्रके पास रखनेसे राजदरबारमें सम्मान होता है और झाड़ा देनेसे सर्पका विष उतरता है। कांसेके कटोरेमें १०८ दफे मंत्रकर पानी पिलानेसे विष उतर जाता है।

४२—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं।

मंत्र—ॐ नमो णमिऊण विषधर-विषप्रणाशन-रोग-शोक-दोष-ग्रह-कप्पदुमच्चजाई सुहनामगहणसकलसुहदे ॐ नमः स्वाहा।

फल—ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे युद्धका भय नहीं रहता।

४३—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं।

मंत्र—ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिनशासनसेवाकारिणी क्षुद्रोपद्रवविनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नमः कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धिमंत्रकी आराधना और यंत्र-पूजनसे सब प्रकारका भय मिटता है, युद्धमें हथियारकी चोट नहीं लगती तथा राजद्वारा धनलाभ होता है।

४४—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाणं।

मंत्र—ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुंभकरणाय लंकाधिपतये महाबलपराक्रमाय मनश्चिंतितं कुरु कुरु स्वाहा।

फल—ऋद्धिमंत्रकी आराधना और यंत्रके पास रखनेसे आपत्ति मिटती है, समुद्रमें तूफानका भय नहीं होता-समुद्र पार कर लिया जाता है।

४५—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाणं।

मंत्र—ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रवशान्तिकारिणी रोगकष्टज्वरोपशमनं शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि—ऋद्धिमंत्रकी आराधनासे और यंत्रके पास रखनेसे बड़ेसे बड़ा भय मिटता है, प्रताप प्रकट होता है, रोग नष्ट होता है और उपसर्ग वगैरहका भय नहीं रहता।

४६—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं श्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः ठः ठः जः जः क्षां क्षीं क्षूं क्षः क्षयः स्वाहा।

विधि—ऋद्धिमंत्र जपने और यंत्र पास रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करनेसे कैदखानेसे छुटकारा होता है, राजा वगैरहका भय नहीं रहता। विधान-प्रतिदिन १०८ बार जाप्य करना चाहिए।

४७—

ऋद्धि—ॐ अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।

मंत्र—ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा।

विधि—१०८ बार ऋद्धिमंत्रकी आराधनाकर शत्रुपर चढ़ाई करनेवालेको विजयलक्ष्मी प्राप्त होती है, शत्रु वश होता है, शत्रुके शस्त्रोंकी धार बेकाम होजाती है, बन्दूककी गोली, बरछी आदिके घाव नहीं हो पाते।

४८—

ऋद्धि—ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं।

मंत्र—ॐ ह्रीं अर्हणमो भगवते महति महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसीणं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौं झ्रौं स्वाहा। ॐ नमो वंभचारिणे अट्ठारहसहस्स सीलांगरथधारिणे नमः स्वाहा।

विधि—४९ दिनतक प्रतिदिन १०८ बार जपनेसे और यंत्र पास रखनेसे मनोवाञ्छित कार्यकी सिद्धि होती है, और जिसे अपने अधीन करना हो उसका नाम चिन्तवन करनेसे वह अपने वश होता है।

आवश्यकीय सूचना।

ऊपर लिखी विधियोंमेंसे जिस विधिमें वस्त्र, आसन और मालाका प्रकार नहीं बतलाया गया है उसे नीचे भांति समझ लेवें:—

'**वशीकरण**'— मंत्रके साधनेमें पीला वस्त्र, पीली माला और पीला आसन लेना चाहिए।

'**मारन**'— में काला वस्त्र, काला आसन और काली माला लेना चाहिए।

'**लक्ष्मी-प्राप्ति**' के मंत्र-साधनमें मोतीकी माला और सफेद वस्त्र लेना चाहिए।

'**मोहन**' में मूंगाकी माला और लाल वस्त्र लेना चाहिए।

'**आकर्षण**' में हरा वस्त्र और हरी माला लेना चाहिए।

जिस विधिमें दिशा न बतलाई गई हो उसका विधान करते समय पूरबको मुख करके बैठे।

यंत्र भोजपत्र पर अनारकी कलम द्वारा केशरसे लिखना चाहिए।

प्रकाशक।

॥ यंत्र १ ॥

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणा-
मुद्योतकं दलितपापतमोवितानम्।
-सम्यक्प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्॥ १

॥ यंत्र २ ॥

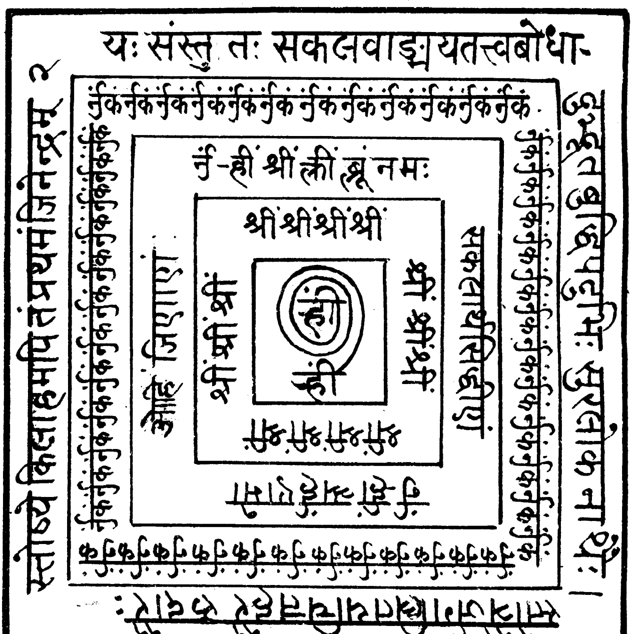

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥ १
श्री श्री श्री श्री
ह्रीं

॥ यंत्र ३ ॥

बुद्ध्याविनापिविबुधार्चितपादपीठ
स्तोतुंसमुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहम्
ॐ नमोभगवते
परमतत्वार्थभावकार्यसिद्धिः
तत्वस्वरूपाय नमः

॥ यंत्र ४ ॥

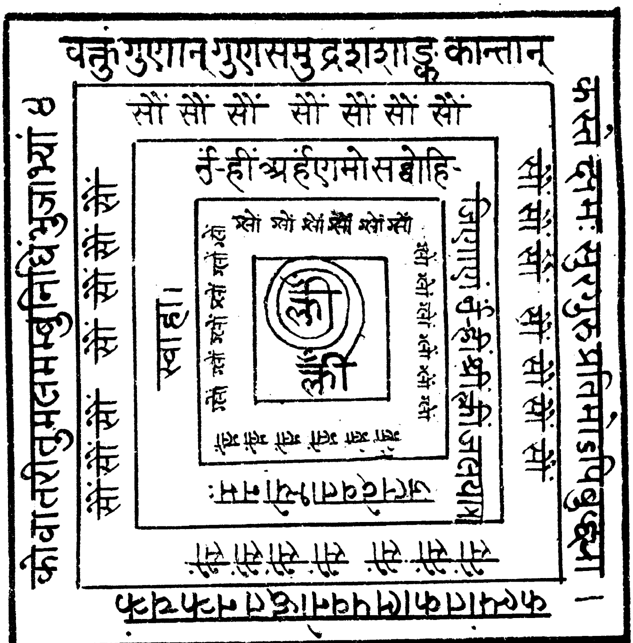

वक्तुं गुणान गुणसमुद्रशशाङ्क कान्तान्
कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्यां ४
सौं सौं सौं सौं सौं सौं सौं
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि-
स्वाहा।

॥ यंत्र ५ ॥

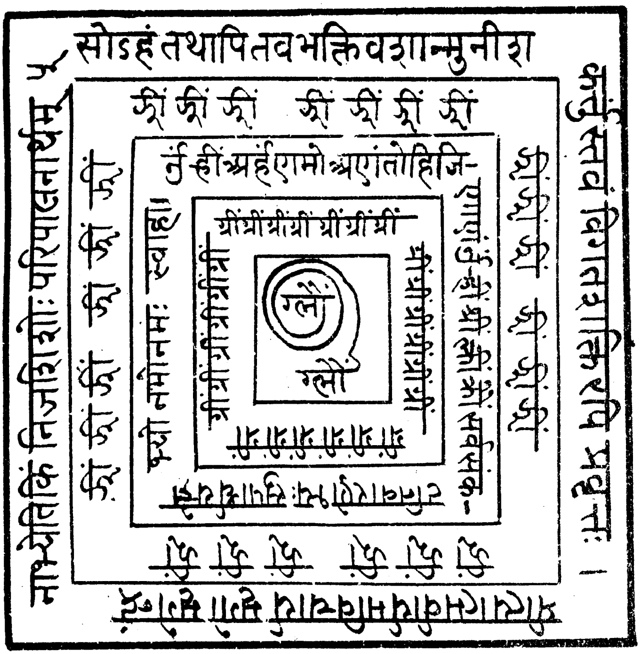

सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः ।
नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ५
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणंतोहिजिणाणं

॥ यंत्र ६ ॥

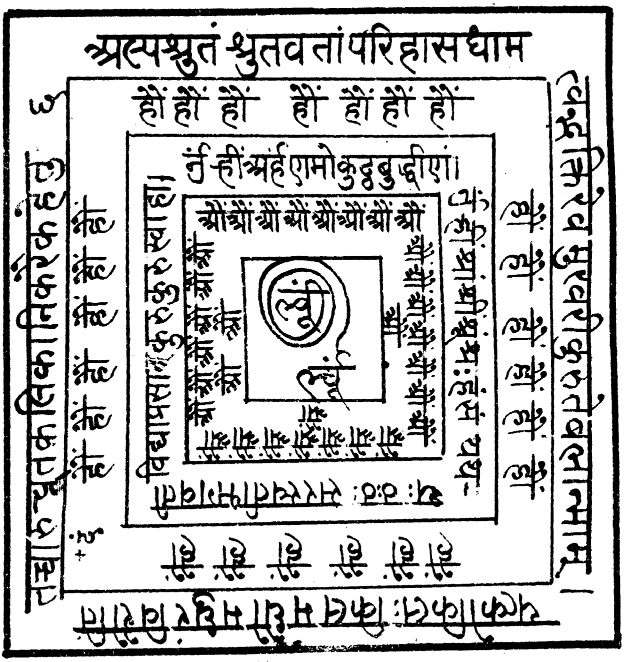

॥ यंत्र ७ ॥

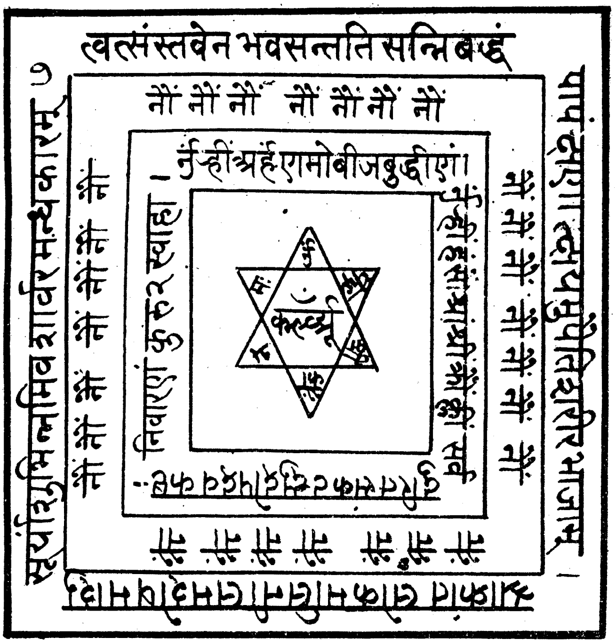

त्वत्संस्तवेन भवसन्तति सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम्
आक्रान्तलोकमलिनीलमशेषमाशु
सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ७
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बीजबुद्धीणं
निवारणं कुरु कुरु स्वाहा

॥ यंत्र ८ ॥

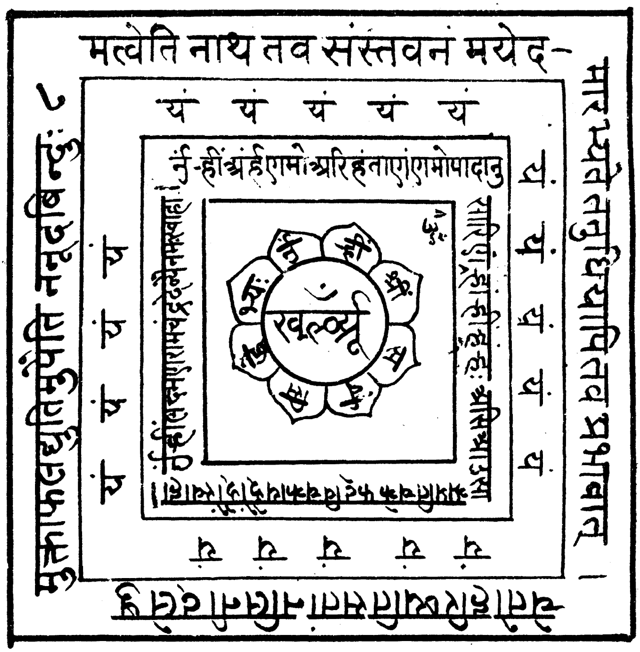
मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु
मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ८
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहंताणं णमो पादानु

॥ यंत्र ८ ॥

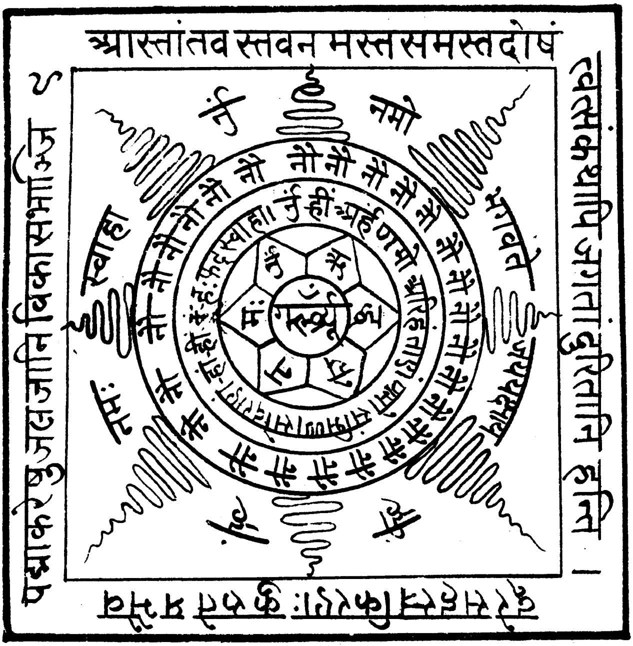
आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ॥ ८

॥ यंत्र १० ॥

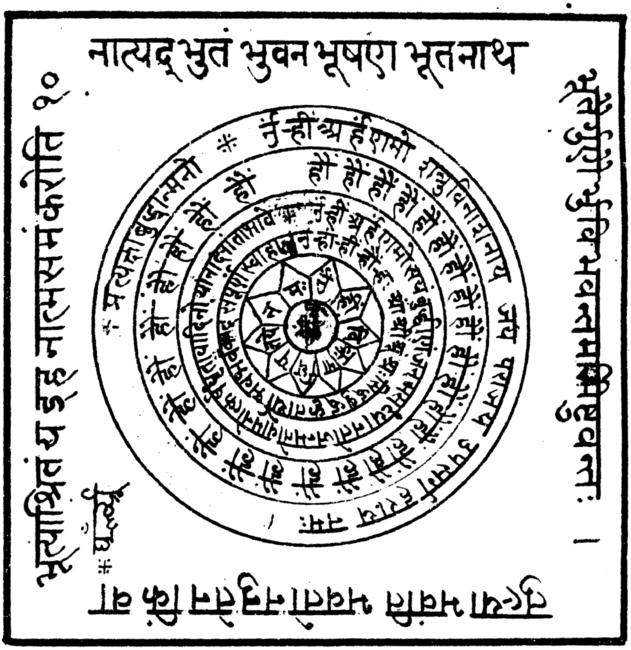
नात्यद्भुतं भुवन भूषण भूतनाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति १०

॥ यंत्र ११ ॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकरद्युति दुग्धसिन्धोः
क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥ ११ ॥
नमो भगवते

॥ यंत्र १२ ॥

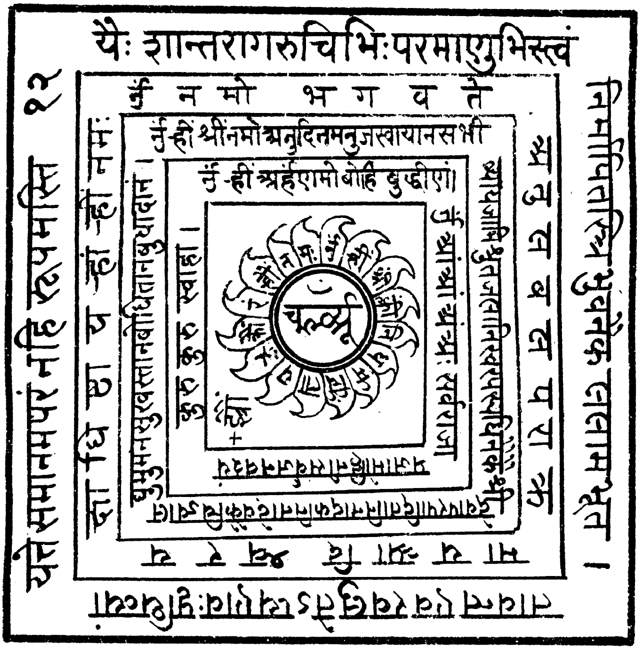
येः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
ॐ नमो भगवते
ॐ ह्रीं श्रीं नमो अनुदिनमनुजस्वायानसभी
ॐ ह्रीं अर्हं णमो बोहि बुद्धीणं।

॥ यंत्र १३ ॥

वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि-
निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानम् ।
बिम्बं कलङ्कमलिनं क्व निशाकरस्य
यद्वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥

॥ यंत्र १४ ॥

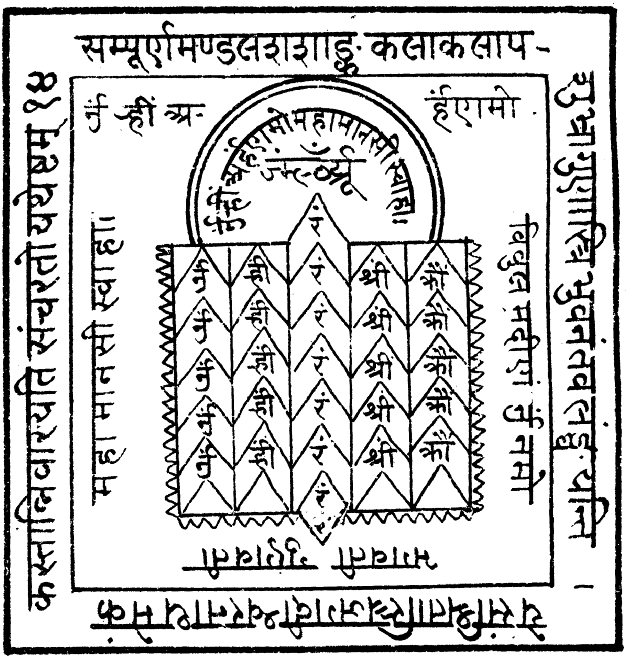

॥ यंत्र १५ ॥

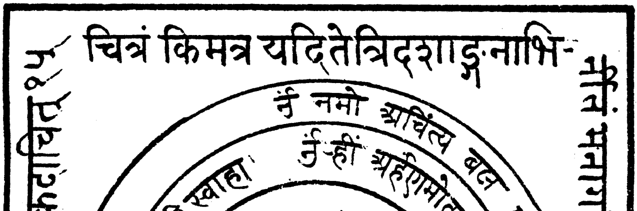
चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।
किं मन्दरादिशिखरं चलितं कदाचित् ॥ १५ ॥

॥ यंत्र १६ ॥

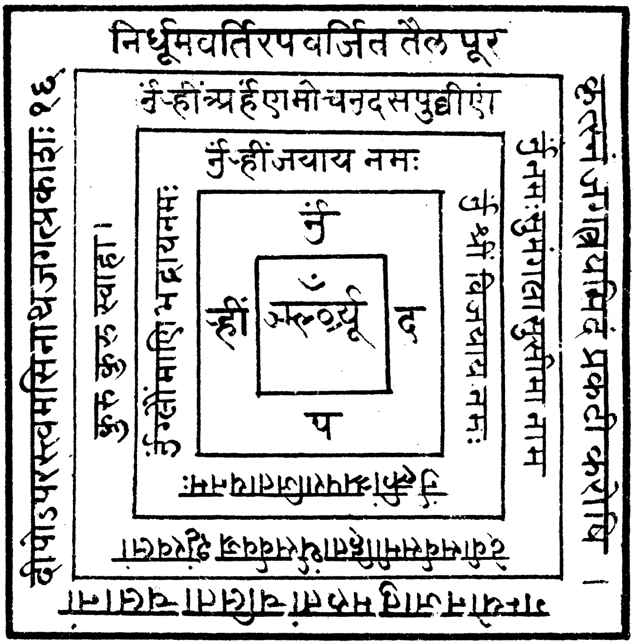
निर्धूमवर्तिरपवर्जिततैलपूर
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
दीपोऽपरस्त्वमसिनाथजगत्प्रकाशः १६
ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं
ॐ नमः सुमंगला सुसीमा नाम
ॐ ह्रीं जयाय नमः
ॐ श्रीं विजयाय नमः
ॐ ह्रीं माणिभद्राय नमः
ॐ
ह्रीं
द
प

॥ यंत्र १७ ॥

नास्तं कदाचि दुपयासि न राहु गम्यः
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः
सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र लोके १७

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठांगमहाणिमित्तकुश-
लाणं ॐ नमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्रविघट्टे
क्षुद्रपीडा जठरपीडा भंजय भंजय सर्व
पीडा सर्वरोगनिवारणं कुरु २ स्वाहा।

ॐ	न	मो	अ
जि	त	श	त्रु
प	रा	ज	यं
कु	रु २	स्वा	हा

॥ यंत्र १८ ॥

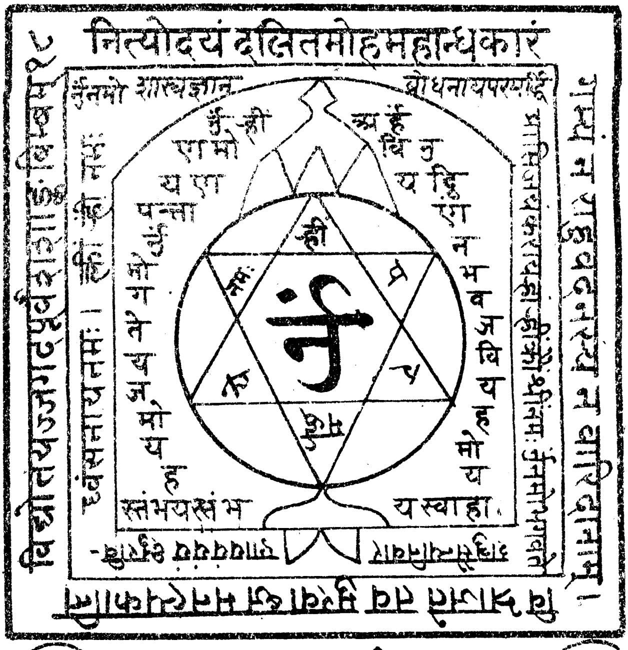

॥ यंत्र १८ ॥

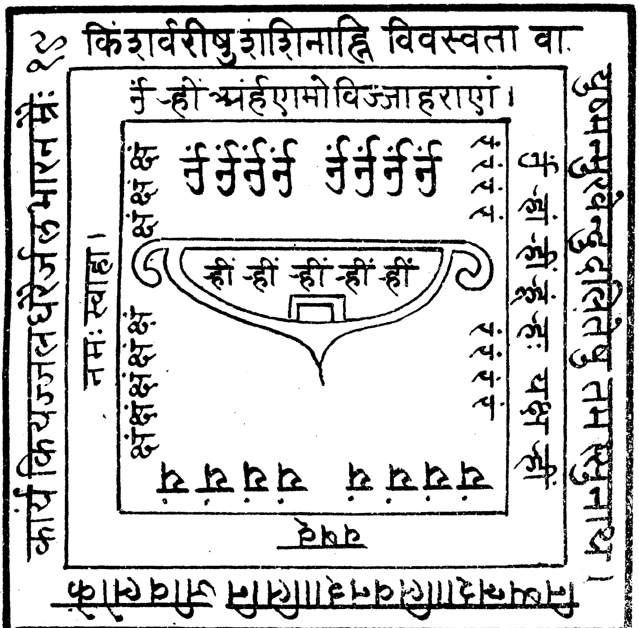
ॐ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा
युष्मन्मुखेन्दुदलितेषु तमस्सु नाथ ।
निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः
ॐ ह्रीं अर्हं णमो विज्जाहराणं ।
ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः यक्ष ह्रीं
नमः स्वाहा ।
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं

॥ यंत्र २० ॥

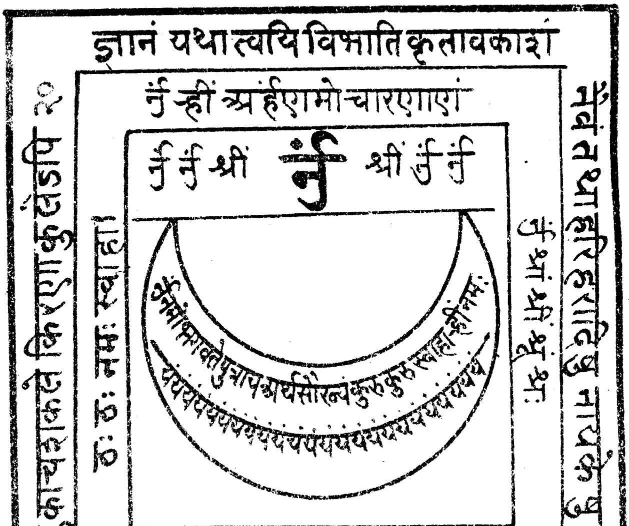

॥ यंत्र २१ ॥

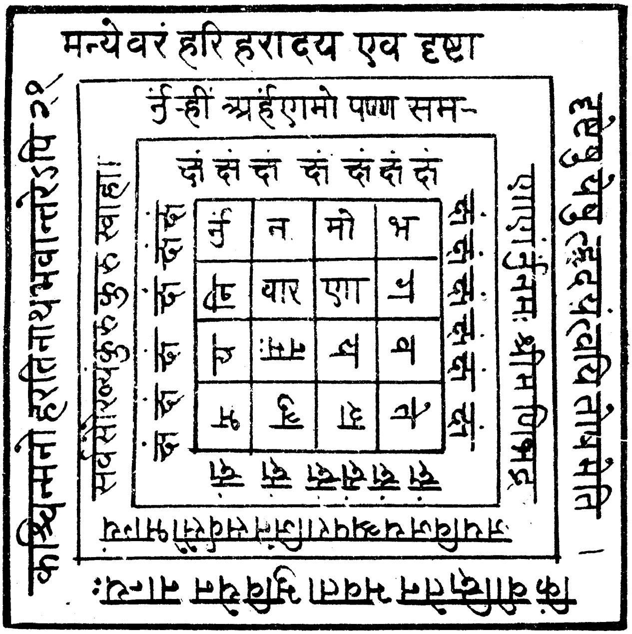
मन्ये वरं हरि हरादय एव दृष्टा
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि २१
ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण सम-
सर्वसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा
ॐ न मो भ
यार णा

॥ यंत्र २२ ॥

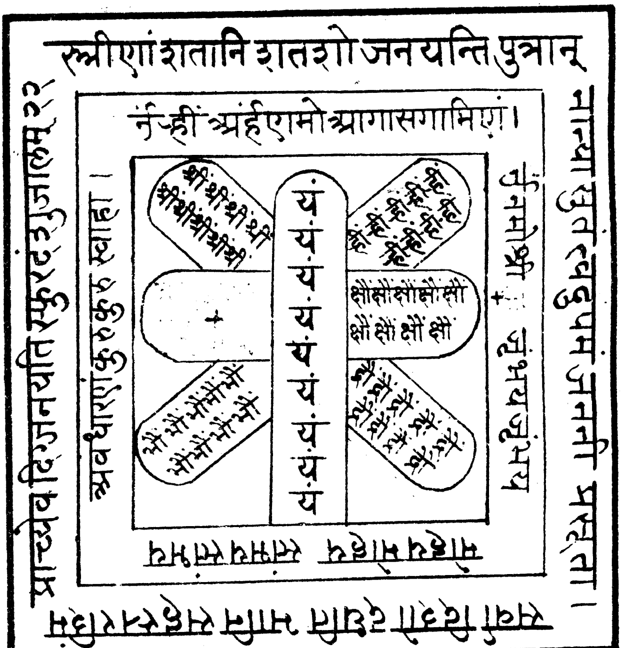
स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम् २२
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आगासगामिणं।
अवधारणं कुरु कुरु स्वाहा।

॥ यंत्र २३ ॥

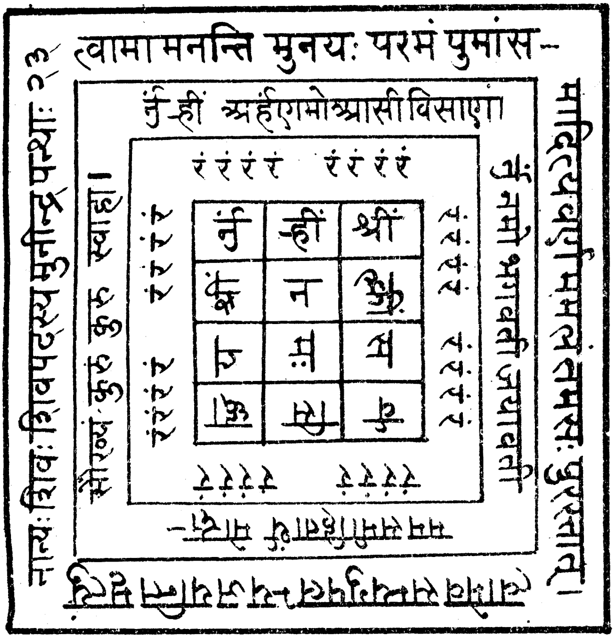
त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्यवर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र पन्थाः २३
ॐ ह्रीं अर्हं णमो आसीविसाणं।
ॐ नमो भगवती जयावती
सौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।
ॐ
ह्रीं
श्रीं
न

॥ यंत्र २४ ॥

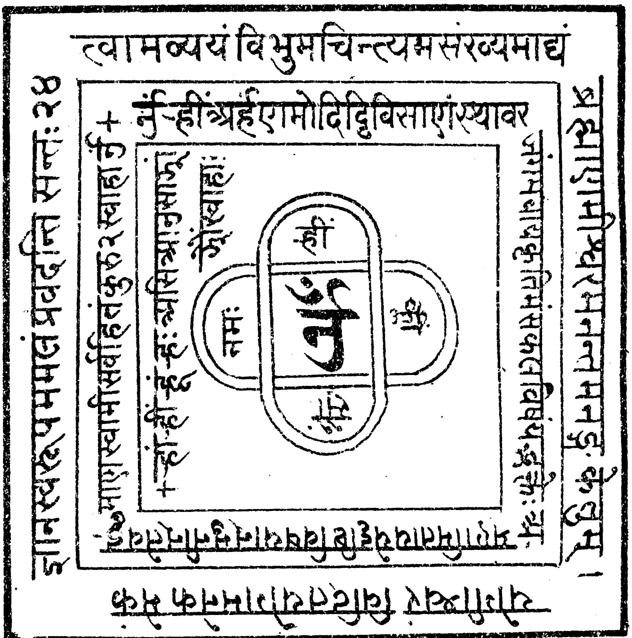

॥ यंत्र २५ ॥

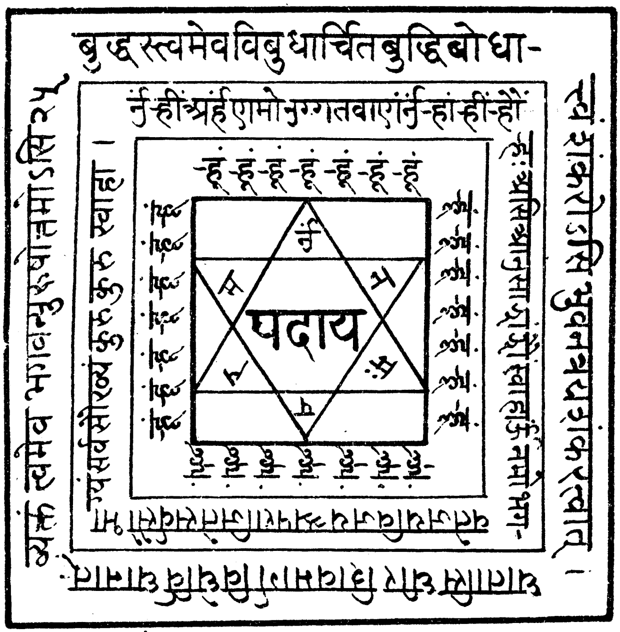

॥ यंत्र २६ ॥

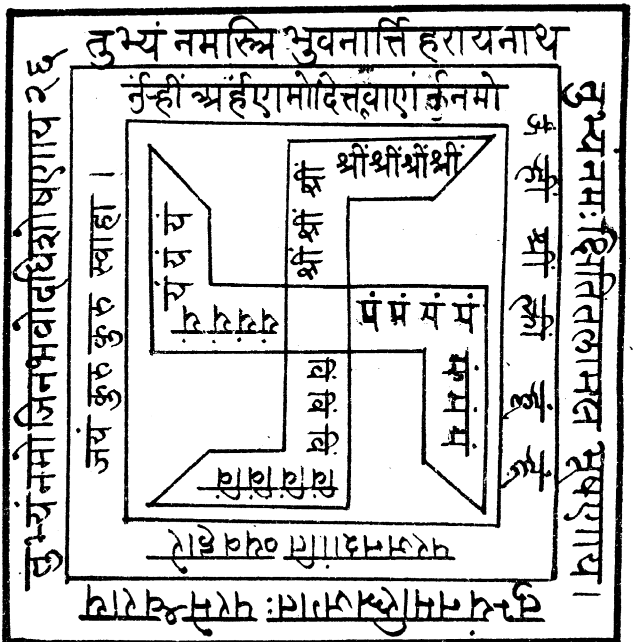
तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ
तुभ्यं नमः क्षितितलामल भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय
तुभ्यं नमो जिन भवोदधिशोषणाय २६
श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं
जय कुरु कुरु स्वाहा।

॥ यंत्र २७ ॥

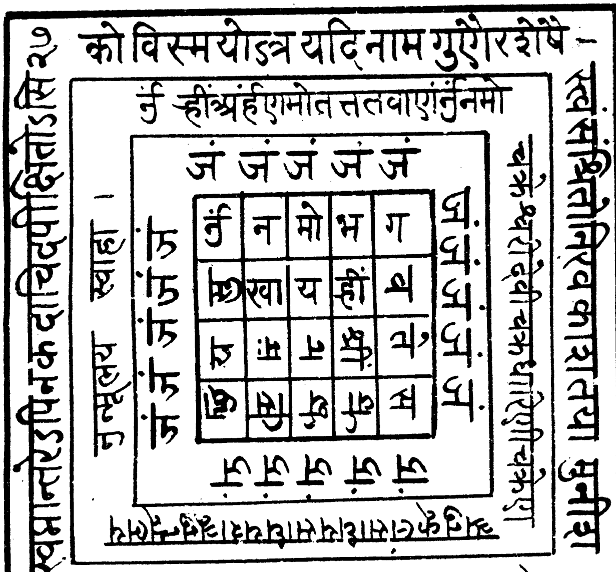

॥ यंत्र २८ ॥

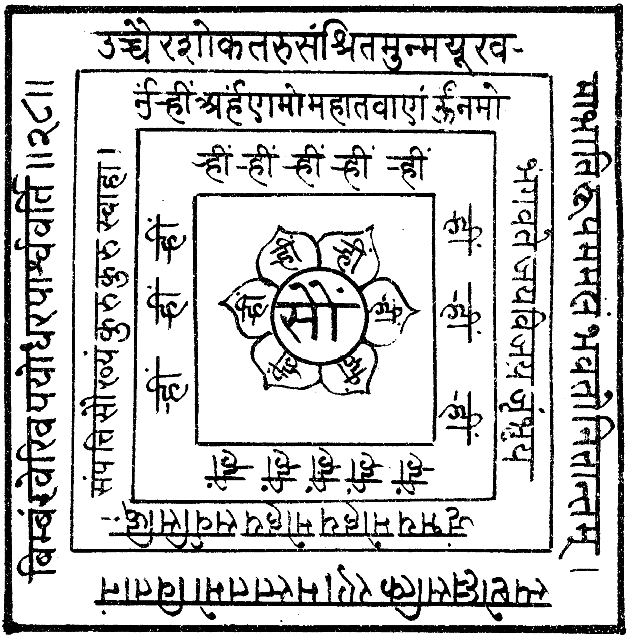
उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
बिम्बं रवेरिव पयोधरपार्श्ववर्ति ॥२८॥
नें-ह्रीं अर्हं णमो महातवाणं ॐ नमो
भगवते जयविजय जृंभय
संपत्तिसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा।
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं
सों

॥ यंत्र २९ ॥

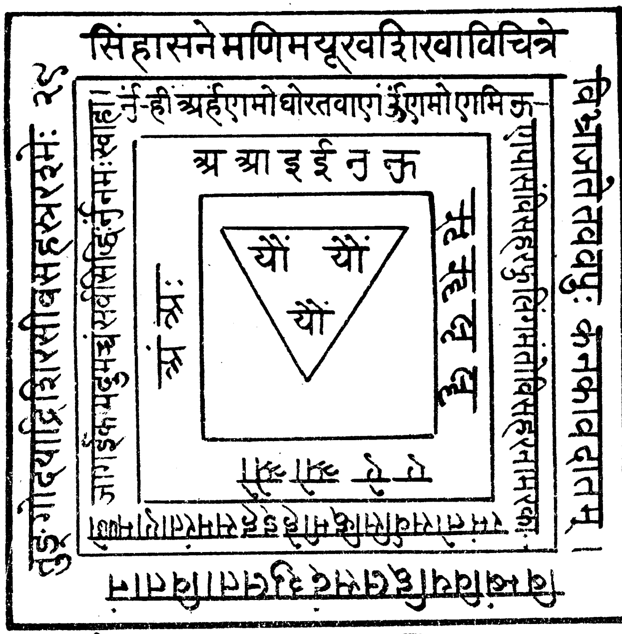

सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्ररश्मेः २९
अ आ इ ई उ ऊ
यौं यौं
यौं

॥ यंत्र ३० ॥

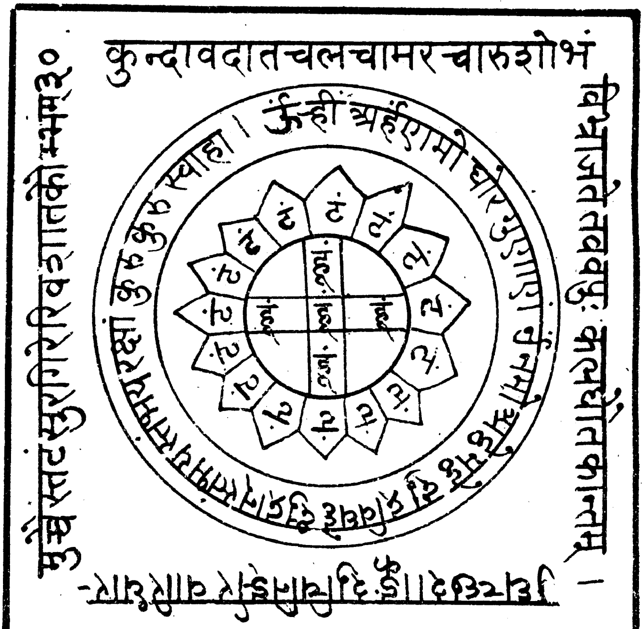

कुन्दावदातचलचामरचारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम्।
उद्यच्छशाङ्कशुचिनिर्झरवारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ३०
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणाणं

॥ यंत्र ३१ ॥

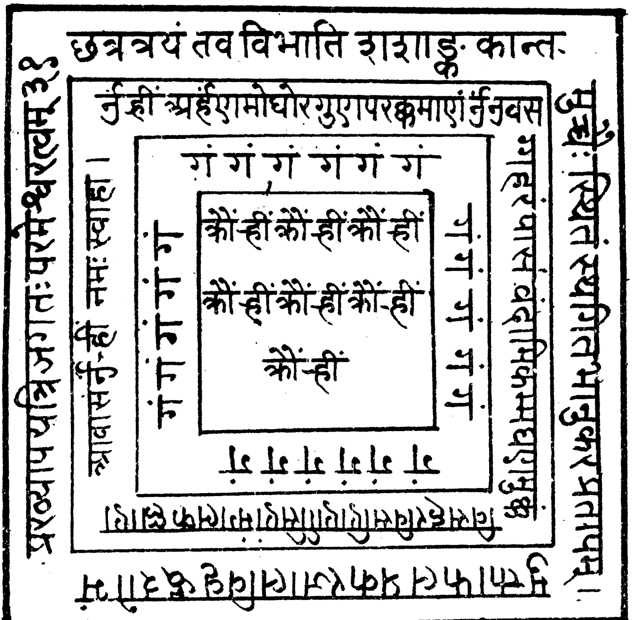
छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकरप्रतापम् ।
मुक्ताफलप्रकरजालविवृद्धशोभं
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ३१
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणपरक्कमाणं ॐ णवस
गहरपासं वंदामि कम्मघणमुक्कं
आवासं ॐ ह्रीं नमः स्वाहा ।
गं गं गं गं गं गं
क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं
क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं क्रौं ह्रीं
क्रौं ह्रीं

॥ यंत्र ३२ ॥

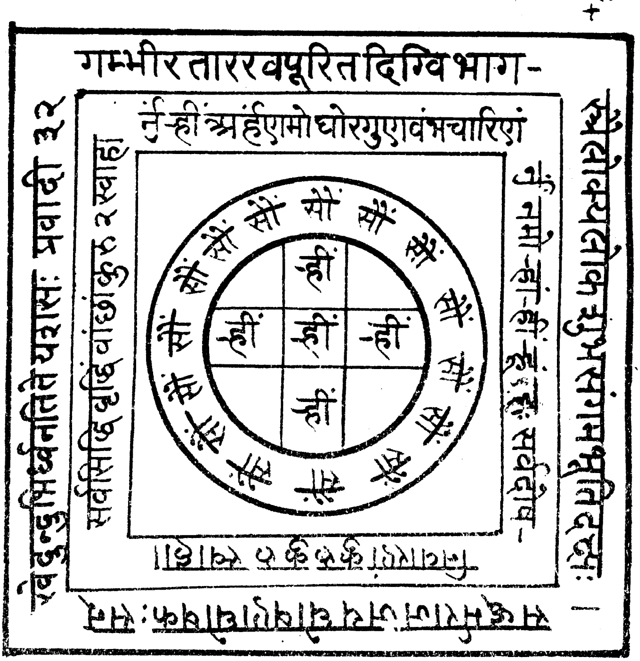
गम्भीरताररवपूरितदिग्विभाग-
स्त्रैलोक्यलोकशुभसंगमभूतिदक्षः।
सद्धर्मराजजयघोषणघोषकः सन्
खेदुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ३२
ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोरगुणबंभचारिणं
ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः सर्वदोष-
निवारणं कुरु कुरु स्वाहा॥
सर्वसिद्धिवृद्धिवांछां कुरु २ स्वाहा
ह्रीं
ह्रीं ह्रीं ह्रीं
ह्रीं

।। यंत्र ३३ ।।

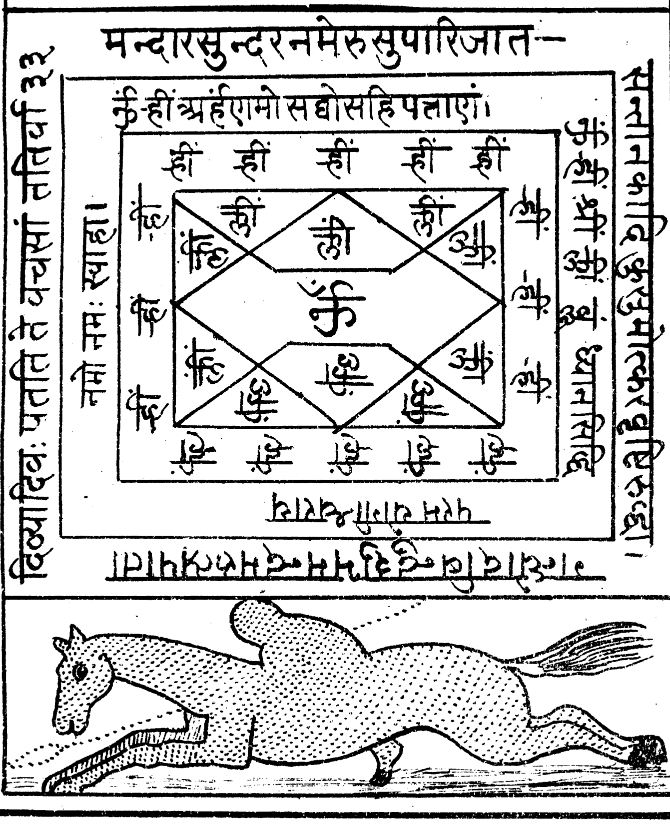

मन्दारसुन्दरनमेरुसुपारिजात–
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा।
दिव्यादिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ३३
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं।
नमो नमः स्वाहा।
ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं
ॐ

॥ यंत्र ३४ ॥

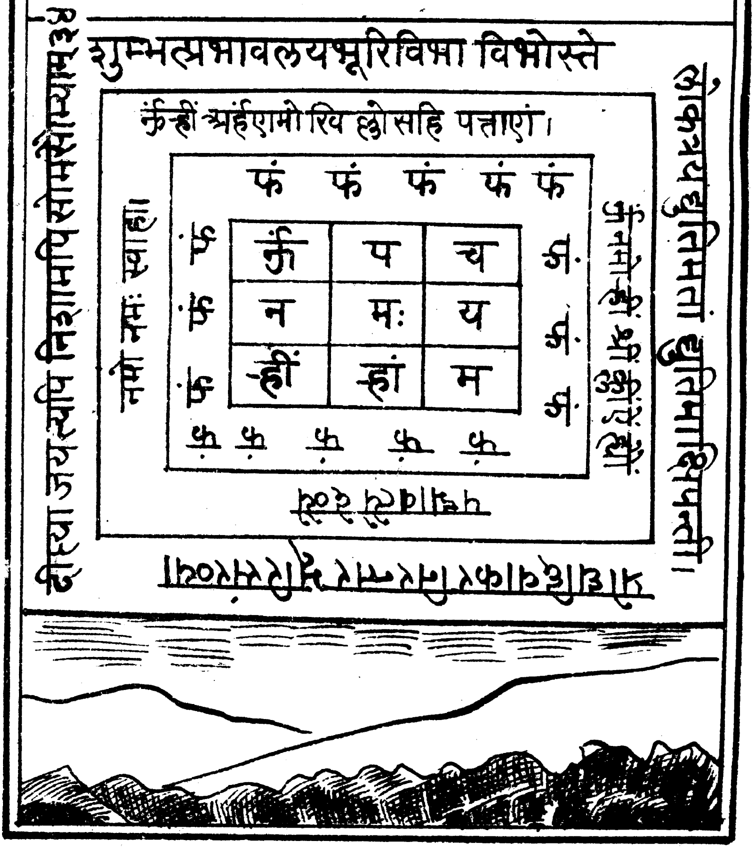

शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते
ॐ ह्रीं अर्हं णमो रिव ह्लोसहि पत्ताणं।
फं फं फं फं फं
ॐ प च
न मः य
ह्रीं ह्रां म

॥ यंत्र ३५ ॥

॥ यंत्र ३६ ॥

ॐ उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ

पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः

पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ॐ ह्रीं

ॐ	ह्रां	ह्रीं	श्रीं
म	ह्रां	ह्रीं	क्लीं
च	ह्रः	ह्रूं	ह्रूं
म	य	र	ह

॥ यंत्र ३७ ॥

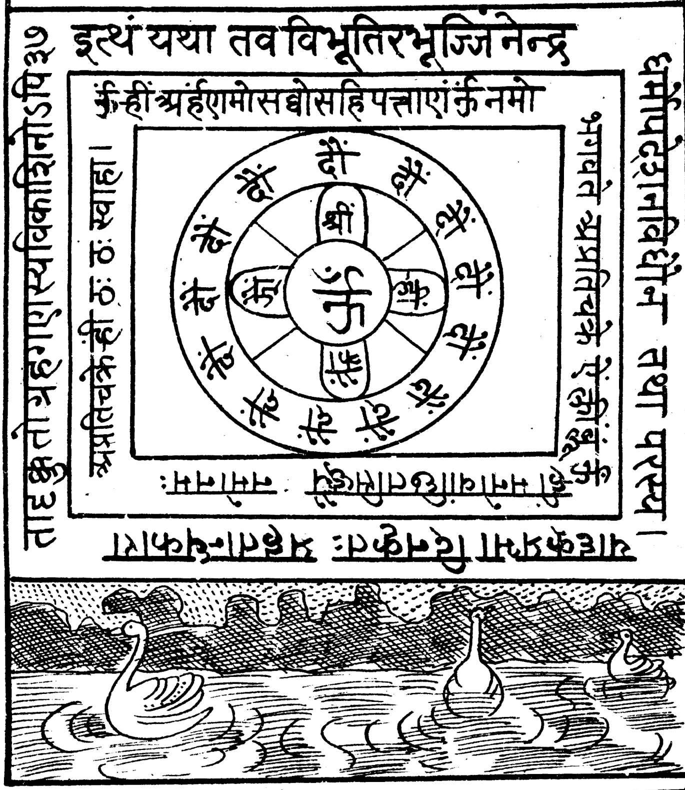
इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र
धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा
तादृक्कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोऽपि ३७
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं ॐ नमो
भगवते अप्रतिचक्रे ऐं क्लीं ब्लूं ॐ
अप्रतिचक्रे ह्रीं ठः ठः स्वाहा।
श्रीं
ॐ

॥ यंत्र ३८ ॥

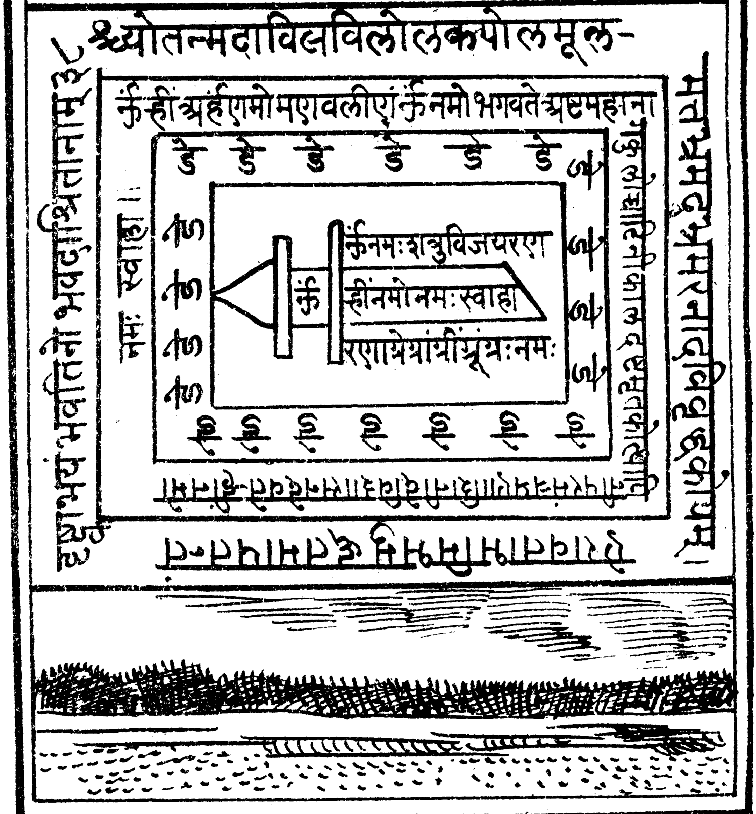
श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-
मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपम् ।
ॐ ह्रीं अर्हं णमो मणवलीएं ॐ नमो भगवते अष्टमहना
ॐ नमः शत्रुविजयरणा
ह्रीं नमो नमः स्वाहा
रणाग्रे ग्रां ग्रीं ग्रूं ग्रः नमः
ॐ
नमः स्वाहा ।

॥ यंत्र ३९ ॥

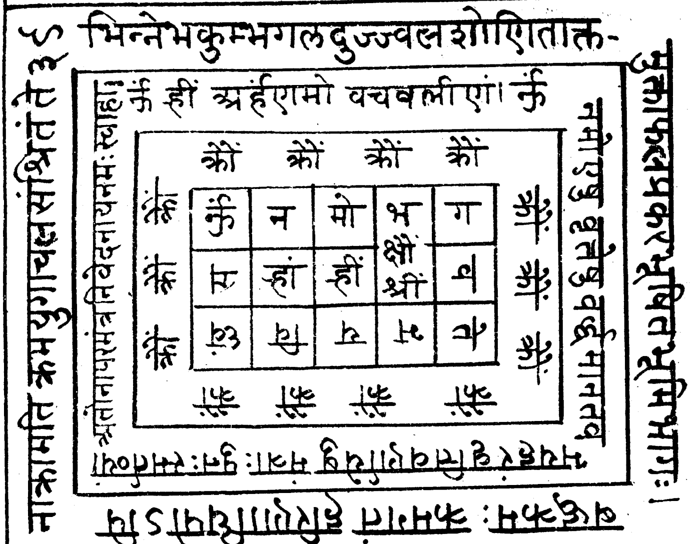

भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-
मुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः।
बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि
नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ३९
ॐ ह्रीं अर्हं णमो वचबलीणं। ॐ
नमो भगवते वर्द्धमानाय
ॐ न मो भ ग

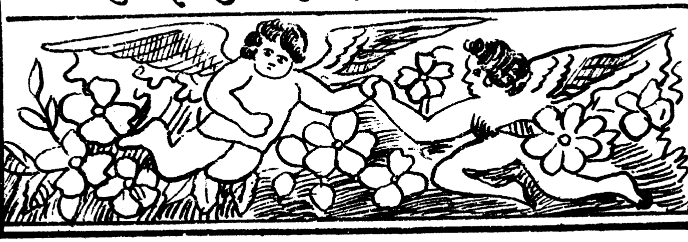

यंत्र ४०

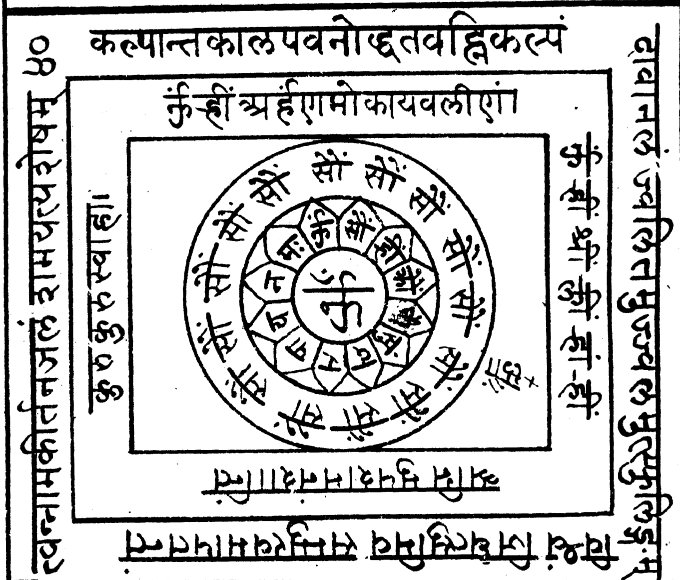
कल्पान्तकालपवनोद्धतवह्निकल्पं
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्
त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ४०
ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायवलीणं।
ॐ

॥ यंत्र ४१ ॥

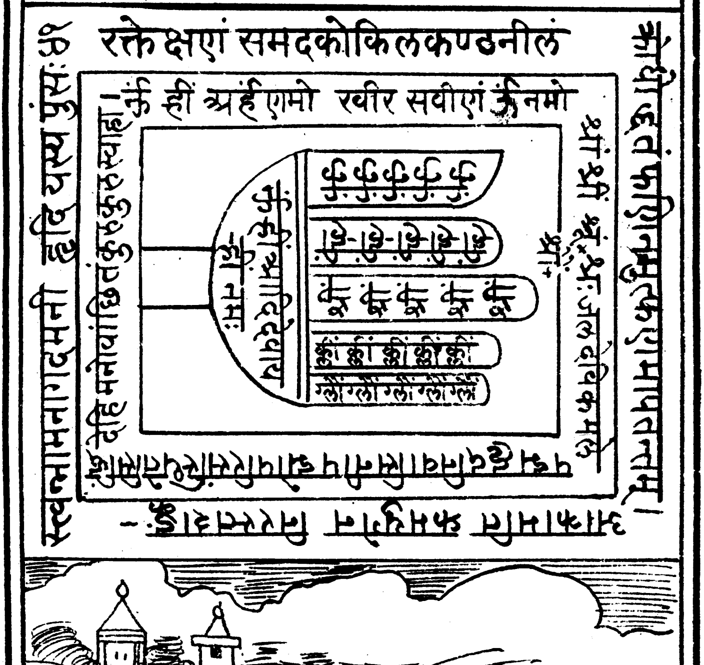
रक्तेक्षणं समदकोकिलकण्ठनीलं
ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीर सवीणं ॐ नमो
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॐ

॥ यंत्र ४२ ॥

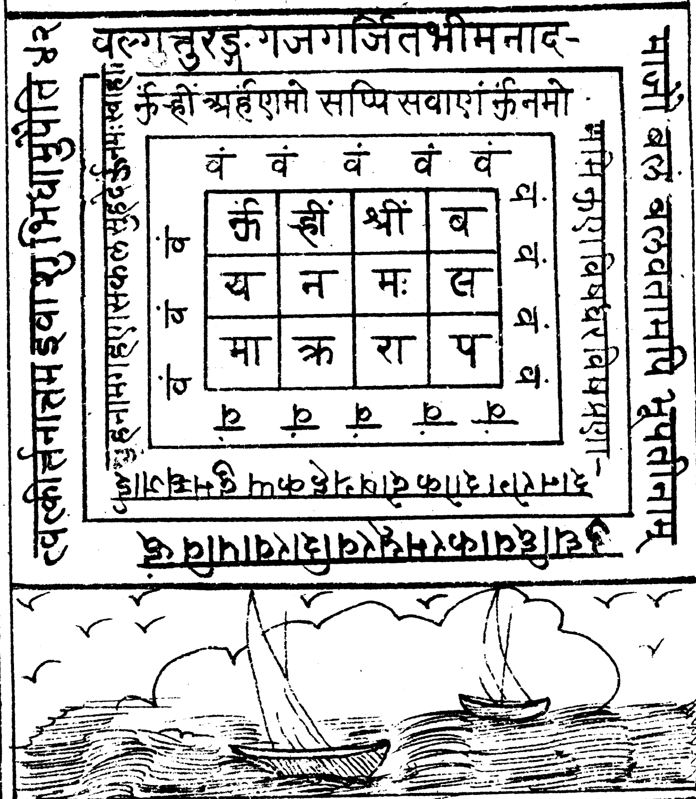

वल्गत्तुरङ्गगजगर्जितभीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनाम्
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ४२
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाणं ॐ नमो
ॐ
ह्रीं
श्रीं
ब
य
न
मः
ल
मा
क्र
रा
प

॥ यंत्र ४३ ॥

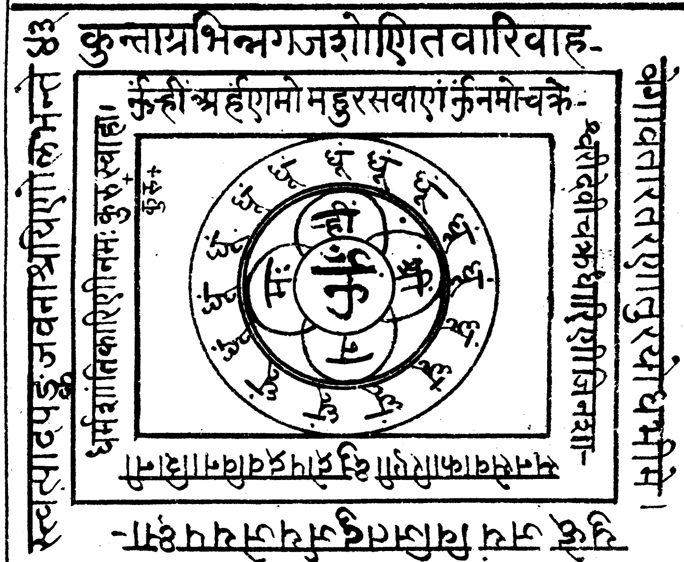
ॐ कुन्ताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाह-
वेगावतारतरणातुरयोधभीमे ।
युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-
स्त्वत्पादपङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥
ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाणं ॐ नमो चक्रे-
श्वरीदेवी चक्रधारिणी जिनया-
ॐ

॥ यंत्र ४४ ॥

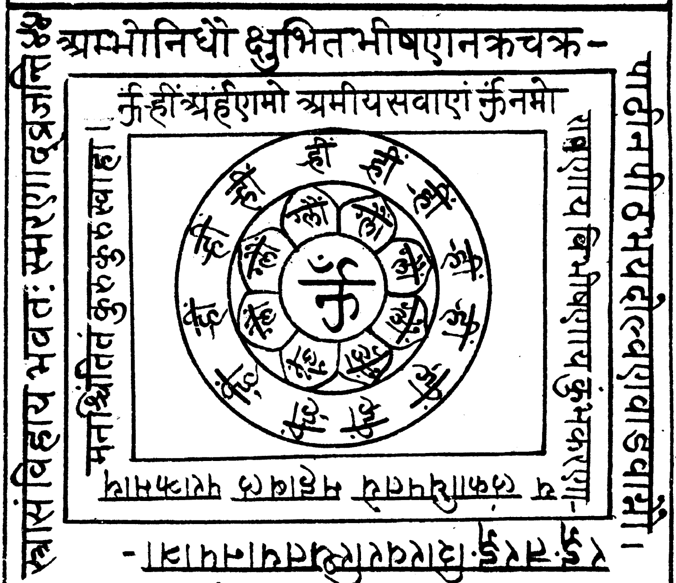
ॐ अम्भोनिधौ क्षुभित भीषणनक्रचक्र-
पाठीनपीठभयदोल्वणवाडवाग्नौ ।
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्‌व्रजन्ति
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीयसवाणं ॐ नमो
ॐ

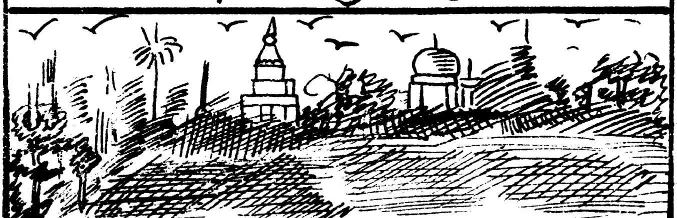

॥ यंत्र ४५ ॥

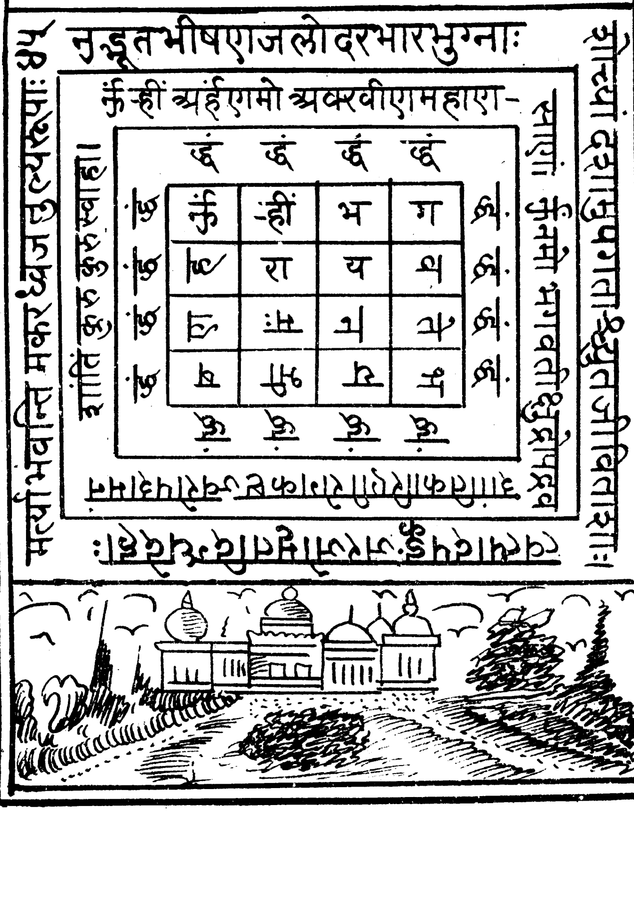

नुद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाण-
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ४५
शांति कुरु कुरु स्वाहा।
ॐ ह्रीं भ ग
रा य

॥ यंत्र ४६ ॥

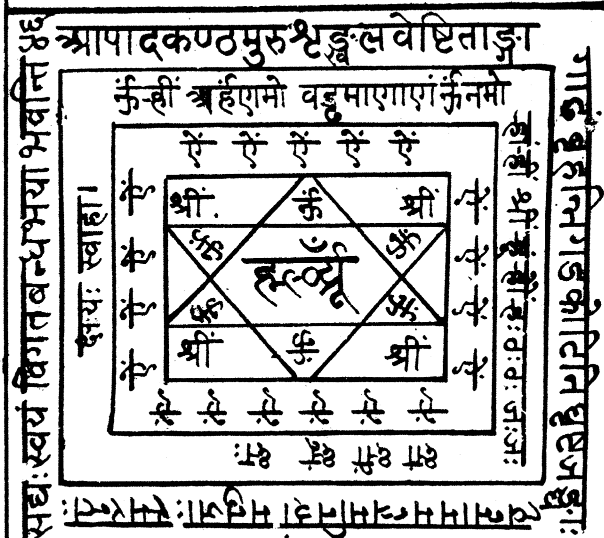
ॐ आपादकण्ठमुरुशृङ्खलवेष्टिताङ्गा
गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः
त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः
सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॐ
ऐं ऐं ऐं ऐं ऐं
श्रीं
ॐ
स्वाहा

॥ यंत्र ४७ ॥

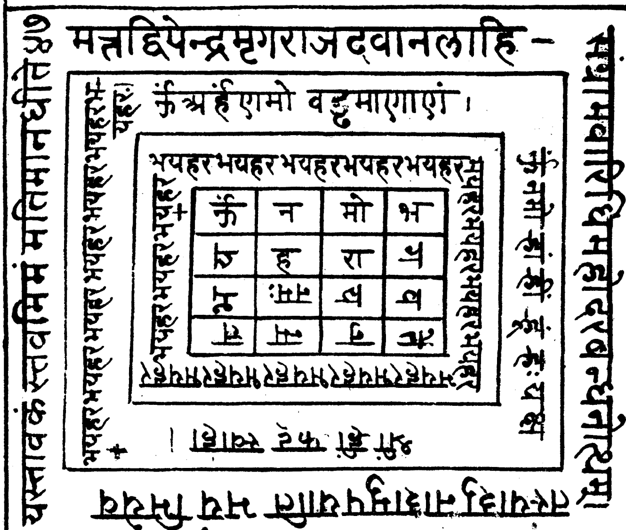
मत्तद्विपेन्द्रमृगराजदवानलाहि-
ॐ अर्हं णमो वड्ढमाणाणं।
भयहर भयहर भयहर भयहर भयहर
ॐ न मो भ

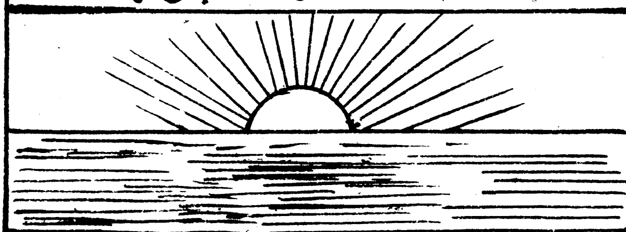

॥ यंत्र ४८ ॥

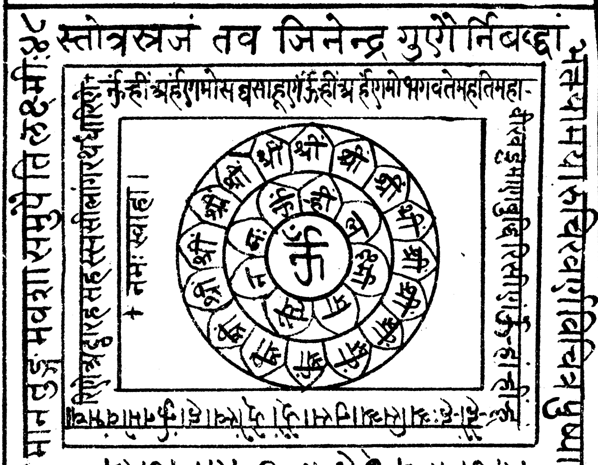
स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां
भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम्
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मीः
ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूणं ॐ ह्रीं अर्हं णमो भगवते महति महा-
नमः स्वाहा

इति